

कहानी : अनुभव और शिल्प

कहानी : अनुभव और शिल्प

लेखक

जैनेन्द्र कुमार

भूमिका

विजयेन्द्र स्नातक

प्रकाशक

पूर्वोदय प्रकाशन, दिल्ली

© जैनेन्द्र ट्रस्ट

प्रकाशक पूर्वोदय प्रकाशन
मन्त्रवाधिमारी
पूर्वोदय प्रा० लि०
८ नेताजी सुभाष भाग
दिल्ली-६

प्रथम संस्करण माघ, १९६७
मूल्य छ रुपये
मुद्रक दद्योगशाला प्रस,
किंग्सघ, दिल्ली-६

लेखकीय

मुनता हूँ कि कहानी लिखना एक गिल्प है और कला है। कहानियाँ मैंने लिखी जरूर हैं और अब भी लिख लेता हूँ लेकिन कता बगैरह का मुझे कुछ पता नहीं है। शायद मान लिया जाता होगा कि लिखी है तो कहानी को मैं जानता जरूर होऊँगा। इसी से जब-तब कहानी का लेकर भेंट वास्ता में मुझे जिरह के नीचे आना पडा है। गोष्ठिया, परिसम्माना में आक्षेप के बीच राडा हाना और बोलना-भुगतना पडा है। यह सबलन कुछ उसी तरह की वाता को लेकर प्रवागित किया जा रहा है। लिखने के पहले दिन से आग तक मैं कहता आ रहा हूँ कि मैं नहीं जानता हूँ। यहाँ तक भी कि जानना चाहता भी नहीं हूँ। कारण और कुछ नहीं, सिफ यह कि होने से ही मुझे छुट्टी नहीं है। इस हाने और होते जान में जो करना समाया है उसी में मुझ से कहानियाँ लिख गई है। उससे आग और विश्वनीय में कुछ नहीं कह सकता हूँ।

पुस्तक सबके समक्ष है और कहानी को लेकर जो कुछ इसमें कहा मृना गया है आगा है उसको लेकर मनोविनाद गायन हा जाय विधेय तत्वचर्चा न होगी।

प्रकाशकीय

यह सफलन अनेक बंधुओं के कृतित्व के योग से बनने में आया है। 'कहानी में अपेक्षणीय और उपेक्षणीय' तथा 'कहानी प्रेरणा, प्रभाव और गल्प लेखा के प्रश्नकर्ता श्री जगन्नील गोयल हैं। सर्वश्री प्रदीप पत्र महेंद्र त्यागी घमेंद्र गुप्त की भेंट वात्ताओं को समुचित करके स्वातंत्र्योत्तर हिन्दी-कहानी एक विशलेषण को स्वरूप मिला है। 'हिन्दी कहानी' गोल निरूपण के प्रश्नकर्ता श्री ओम प्रकाश दीपक हैं। सम्पादन में उपयुक्त लेखों का उपयुक्त शीपक आदि देने की आवश्यकता हुई है। विश्वास है कर्ता बंधुओं को वे अनुकूल प्रतीत होंगे।

'नीलम देव की राजकन्या' ग्रामोफोन का रिकार्ड और पत्नी कहानी पर लखन के बहनव्य सफलन में सम्मिलित हैं। उनकी विज्ञान और अविज्ञान कहानियाँ पर्याप्त चर्चास्पष्ट रही थी। उस प्रकरण में घमयुग में प्रकाशित श्री रमेश चक्षी और लेखक के पत्र भी उपयोगी जानकर यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

कलकत्ता क्या ममारोह में जनेन्द्रजी के बहनव्य और तत्प्रेरित बहन एवम अत्यन्त प्रतियोगिता को ध्यान में रखकर उनकी अपनी कविपत्त दी जा रही है।

दिल्ली विश्वविद्यालय के श्री डा० विजयेन्द्र श्याम ने पारायणभूषक पुस्तक का मूल्यांकन तयार की है जो हिन्दी कहानी के नये आयामों का निर्माण कराती है।

इन सभी बंधुओं के सहयोग के लिए हम उनके प्रति हृदय से आभारी हैं।

अनुक्रम

लेखकीय ५

प्रकाशकीय ६

✓ भूमिका ६

अपनी कैफियत २६

निवेदन और जिज्ञासा ४३

मेरी रचना प्रक्रिया ४८

✓ कहानी में अपेक्षणीय और उपेक्षणीय ५६

✓ कहानी प्रेरणा, प्रभाव और शिल्प ६७

स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी एक विवेचन ७६

✓ हिन्दी-कहानी शील निरूपण ६७

✓ कहानी, नई कहानी अ-कहानी कुछ प्रश्न १११

कितना नया, कितना पुराना ११८

✓ कहानी लेखन और न जानना १२४

✓ हिन्दी कहानी में यथाथवाद का विरोध १३०

वक्तव्य १४१

पत्नी' के बारे में १४८

विवाद प्रतिवाद १५२

प्रकाशकीय

यह सकलन अनेक व धुओं के कृतित्व के योग से बनने में आया है। कहानी में अपेक्षणीय और उपेक्षणीय तथा कहानी प्रेरणा, प्रभाव और शिल्प' लेखों के प्रश्नकर्ता श्री जगदीश गोयल हैं। सवश्री प्रदीप पत्र महेंद्र त्यागी, धर्मेंद्र गुप्त की भेंट बार्ताओं को समुक्त करके स्वातश्रोतर हिंदी कहानी एक विगलेपण को स्वरूपमिला है। 'हिंदी कहानी शील निरूपण के प्रश्नकर्ता श्री ओम प्रकाश दीपक हैं। सम्पादन में उपयुक्त लेखों को उपयुक्त शीषक आदि देने की आवश्यकता हुई है। विश्वास है कर्ता बंधुओं को वे अनुकूल प्रतीत होंगे।

नीलम देश की राजकन्या ग्रामोफोन का रिकार्ड और परनी कहानी पर लखक के वक्तव्य सकलन में सम्मिलित हैं। उनकी विज्ञान और अविज्ञान कहानियाँ पर्याप्त चर्चास्पद रही थी। उस प्रकरण में धमयुग में प्रकाशित श्री रमेश बंधी और लखक के पत्र भी उपयोगी जानकर यहाँ प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

कलकत्ता क्या-समारोह में जनेन्द्रजी के वक्तव्य और तत्प्रेरित व्यक्त एवम अव्यक्त प्रतिप्रियाभा को ध्यान में रखकर उनकी अपनी कफियत दी जा रही है।

दिल्ली विश्वविद्यालय के श्री डा० विजये द्र स्नानक ने पारायणपूवक पुस्तक की भूमिका तयार की है जो हिंदी कहानी के नये आयामों का निर्माण कराती है।

इन सभी बंधुओं के सहयोग के लिए हम उनके प्रति हृदय से आभारी हैं।



अनुक्रम

- लेखकीय ५
प्रकाशकीय ६
✓ भूमिका ६
अपनी कफियत २६
निवेदन और जिनासा ४३
मेरी रचना प्रक्रिया ४८
✓ कहानी में अपेक्षणीय और अपेक्षणीय ५६
✓ कहानी प्रेरणा, प्रभाव और शिल्प ६७
स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कहानी एक विवेचन ७६
✓ हिन्दी-कहानी गीत निरूपण ६७
✓ कहानी, नई कहानी अ-कहानी कुछ प्रश्न १११
कितना नया कितना पुराना ११८
✓ कहानी लेखन और न जानना १२४
✓ हिन्दी-कहानी में यथापवाद का विरोध १३०
वक्तव्य १४१
पत्नी के बारे में १४८
विवाद प्रतिवाद १५२

भूमिका

डा० विजयेन्द्र स्नातक

हिन्दी कथा साहित्य के इतिहास में प्रेमचन्द के बाद जन द्रकुमार का चतुर्थ एक ऐतिहासिक घटना है। जेनेन्द्रकुमार कथा साहित्य में जिस रूप में प्रविष्ट हुए वह भी कम विस्मयजनक नहीं है। प्रारम्भ में जेनेन्द्र विचारक रहे होंगे विचार और चिन्तन के क्षेत्र की दृष्टि नहीं है। चिन्तन मनन में लीन होने पर प्रत्येक व्यक्ति लोक परलोक सबमें विचरण करने का अधिकार प्राप्त कर लेता है। मैं नहीं जानता कि जेनेन्द्र ने यह अधिकार किस आयु में पा लिया था। मैंने उनके बारे में जो कुछ पढ़ा है उसमें भी इसका कोई व्यौरा नहीं है। किन्तु जेनेन्द्र क कथा क्षेत्र में प्रवेश करने की बात विचित्र होने पर भी जेनेन्द्र-साहित्य के पाठकों को भलीभांति विदित है। जेनेन्द्र ने एक युवक की बात, बिना किसी संयोजना के सरसरी तौर पर, लेकिन पूरी सहजता के साथ परख में लिखी थी। 'परख' लिखते समय जेनेन्द्र को उपवास की रचना-प्रक्रिया का बोध नहीं था शास्त्रीय समीक्षा में उपवास के क्या तत्त्व होते हैं यह भी जानने की जन द्र न चिन्ता नहीं की थी। लेकिन हाँ जेनेन्द्र न सत्य-धन को पीते देखा था, बट्टी की भीतर ही भीतर बसमसाते देखा था, और उस सामाजिक परिवेश का भी दबा था जो इन दोनों पानों के चारों ओर फला होने पर भी इन्हें बाध रहा था। वस, जेनेन्द्र ने उसे लिपिबद्ध कर डाला और प्रेमचन्द ने कहा कि यह यथाथ-दृष्टि का उन्मेष करन वाली सफल कृति है— यह नया उपवास है। मैं इसीलिए कहता हूँ कि जेनेन्द्र का कथा क्षेत्र में उद्भव एक आविष्कार किन्तु अदभुत ऐतिहासिक घटना है।

जनेद्र को हिंदा-कथा क्षेत्र में आये आज छत्तीस वर्ष व्यतीत हो गये । बीसवीं शताब्दी की एक तिहाई और वह भी शताब्दी के ठीक मध्य की छत्तीसी जनेद्र की रचना अवधि है । इस अवधि के पूर्वार्द्ध को हिंदी साहित्य के इतिहास लेखक 'प्रेमचंदोत्तर हिंदी कथा साहित्य' के नाम से व्यवहृत करते हैं और उत्तरार्द्ध को स्वातंत्र्योत्तर कथा साहित्य के नाम से स्वाधीनता प्राप्ति के परिप्रेक्ष्य में रखकर नयमानदण्डों और मूल्या द्वारा उसका आकलन अध्ययन करते हैं । इन दोनों विभाजनों में सप्रथम विभाजन में जनेद्र प्रमुख कथाकार हैं । जनेद्र के उसमें प्रमुख होने का कभी कोई दावा नहीं किया कि तु कहानी को नया मोड़ देने और पात्रों के अतद्ध दृष्टि को चित्रित करने की नयी शैली के कारण यह स्थान जनेद्र को अनायास उपलब्ध हो गया है । परन्तु के बाद जनेद्र ने कहानी और उपन्यास दोनों क्षेत्रों में विपुल सृजन किया । उपन्यासों में सुनीता और त्याग-पत्र तो अपने युग की श्रेष्ठतम कृति रूप में समाहित हुए । इसी समय उनकी अत्यंत विख्यात कहानियाँ भी प्रकाश में आईं । कहानी में जिस संवेदन और बाध को आज बड़े आयास पूर्वक लाया जा रहा है वह आज से तीस वर्ष पूर्व त्रिंशो जनेद्र की कहानियाँ में इतनी प्रचुर मात्रा में था कि उसमें बिना कहानी का विश्लेषण ही ही नहीं सकता । कुछ समीक्षकों ने इसी संवेदन और जीवन बोध को पाकर जनेद्र की कहानियों को विचारात्मक कहानी में निवधाल्मक कहानी तक पहुँचाने का प्रयत्न किया था । किंतु कहानी, यदि वह किसी कथ्य को घटनात्मक रूप में प्रस्तुत करती है तभी कहानी है अन्यथा नहीं—यह बात जनेद्र की समझ में कभी नहीं आई । उन्हें घटनाओं की संयोजना का आग्रह कभी नहीं रहा । घटनाएँ तो केवल आवरण मात्र हैं—और कहानी केवल आवरण नहीं है । कोई व्यक्ति खोल को लेकर जीवित चेतना की प्राप्ति का दम नहीं करेगा । इसलिए जनेद्र की कहानियाँ में जिन पात्रों की सृष्टि हुई वे केवल आपबीती को दुहराने वाले न होकर आपबीती के कारण काय संवधा में उनमें बाल, उन गुणधर्मों में स्वयं उत्तम कर उन्हें सुलझाने का प्रयत्न करने वाले हैं । बौद्ध कह सकता है कि सुलझाने को सुलझाने की हरेक कोणिकाएँ सुलझान ही में खरम होती है—अनेक बार मन की गुणधर्मों के फेर में पड़ कर जनेद्र के पात्र यदि स्वयं दिग्भ्रमित हो गये हों तो इसमें आश्चर्य की क्या

बात है। जैनेन्द्र के मनका सशय और सदेह जीवन को अधिक गहराई से जानने समझने का साधन मात्र है। यह उनकी जीवन यात्रा की प्रारम्भिक सोपान मात्र है, यात्रा का अन्तिम गतव्य नहीं।

जैनेन्द्र जब कथा क्षेत्र में अवतरित हुए थे तब योरोप में मनोविश्लेषण का सिद्धांत चिकित्सा विज्ञान से हाना हुआ ललित साहित्य में पूरी तरह पँठ चुका था। फ्राइड आदि मनोविश्लेषण शास्त्रिया की स्थापनाएँ काव्य, नाटक और कथा साहित्य की समीक्षा में चरिताम हो रही थी और रचनाकार भी उनसे पूरी तरह अवगत था। हिंदी में मनाविश्लेषण शास्त्र का, समीक्षा क्षेत्र में प्रयोग, छायावाद युग से प्रारम्भ हुआ और छायावादोत्तर लेखक अर्थात् सन् १९३० के बाद के रचनाकार के भीतर इस शास्त्र की गंध धीरे धीरे बमने लगी थी। जैनेन्द्र उसी युग में आये और मैं नहीं जानता कि वे इस शास्त्र गंध से वासित थे या नहीं किंतु गंध तो जैसे घातावरण में सहज ही फल जाती है वैसे ही वह जैनेन्द्र के साहित्य में चुपचाप आ गई हो तो कुछ आश्चर्य नहीं है। लेकिन शायद जनेन्द्र इस गंध को काम्य न मानते हों और इसी कारण गायद अपने साहित्य से इसे दूर रखने की इच्छा भी व्यक्त करें किन्तु मरी अपनी दृष्टि से वे मनोविश्लेषण के फेर से बच नहीं सकते, भले ही उस विश्लेषण का वे स्वतः स्फूर्त कहकर फ्राइड आदि मनोविज्ञान वेत्ता विद्वत्सको से दूर रखकर दें।

मैं इस तथ्य का सचेत इसलिये कर रहा हूँ कि वाद के साहित्य में मनोविज्ञान या मनोविश्लेषण शास्त्र को एक उपयोगी तत्त्व समझ कर स्वीकृत किया गया और उसका प्रयोगात्मक पक्ष की स्वीकृत से कथा में पात्रों के अन्तर्द्वंद्व ही नहीं घटनाओं का विकास एवं फलिताम भी प्रस्तुत किये गये। कुछ समीक्षकों ने तो कथा लेखकों के वग बनाते हुए जनेन्द्र को भी इसी वग में रखने का आग्रह किया। मैं नहीं समझता कि जनेन्द्र ने अपने को कभी किसी वग में बांधा जाना पसंद किया हो, लेकिन जनेन्द्र की पसंद की परवाह कौन करता है। जब समीक्षा वग विभाजन से ही चलती है तो कोई भी लेखक अपने बंधन को, अनिच्छा से ही सही मानने से इकार नहीं कर सकता। फलतः कथा

साहित्य में मनाविधान का पूरी तरह सूत्रपात करने का दायित्व जनेन्द्र और इनाचन्द्र जोषी पर लाया गया। मैं यह बात प्रेमचोत्तर कथासाहित्य के इतिहास के साक्ष्य पर कह रहा हूँ। स्वातन्त्र्योत्तर काल में इस दायित्व को जनेन्द्र सखीनन का प्रयत्न हुआ और जनेन्द्र की श्रेष्ठ कहानियाँ म.मन के सघष और द्रुद्र को अथवा ठहरा कर जनेन्द्र का काम कलि के कुत्सित वन में ही सीमित रख कर देखने की बात नया कथाकारों द्वारा कही गई। कौसी विचित्र विडम्बना है कि जनेन्द्र की सर्वश्रेष्ठ कहानियाँ का अन्तर्द्रुद्र स्वातन्त्र्योत्तर काल में, यौन कूठाआ से लिपटा जुगुप्सा पूषण करार दे दिया गया। समीक्षा की ऐसी दयनीय स्थिति भी होती है इसकी कल्पना तो की जा सकती है किन्तु इसे घटित हाते देवना समीक्षा के मानदण्डों का दूर ही से प्रणाम करना है। पूर्वाग्रह से द्रुष्ट पक्षधरता की यही परिणति ममकनी चाहिए।

जनेन्द्र ने अपने उपन्यासों में कुछ ऐसे पात्र अवतरित किये हैं जो साधारण से भिन्न होते हुए भी उन सिद्धांतों के परीक्षण में लगे हुए हैं जो वायद साधारण व्यक्ति द्वारा क्रियावित होते नहीं दखे जाते। सिद्धांतों की स्वीकृति और क्रियावयन दो भिन्न तथ्य हैं। सिद्धांत की स्वीकृति तथ्य मात्र है। किन्तु सिद्धांत का क्रियावयन सत्य की स्थापना है। सिद्धान्त कोई भी क्या न हो अपने पुस्तकीय रूप में वह ग्रह या अग्रह नहीं होता। अहिंसा या सत्य जीवन वाच के निकष पर ही सिद्धांत बनते हैं जैसे तो ये दोनों शब्द घम-प्र प की शोभा बढ़ाने के लिए हैं।

जनेन्द्र ने कहानियों में जिन पात्रों को अवतरित किया था वे पात्र जनेन्द्र ने अपने हृदय में देखे होंगे। न भी देखे हो तो जनेन्द्र के भीतर से भी वे पात्र आ सकते हैं। किसी भी पात्र घटना या चित्रण को नाम और स्थान पूरक बनने में होना ही चाहिए यह कोई अनिवाय बात नहीं है। भीतर में पात्र होता है भीतर में घटनाएँ घटती हैं भीतर में द्रुद्र से चित्रण की रेखाएँ खिचती हैं। अनुभूति बाहर से भीतर जगती है और भीतर से बाहर आकर रूपापित्त होती है। इस प्रक्रिया को कोई भी कथाकार सहज ही में जान सकता है। जनेन्द्र ने अपनी प्रारम्भिक कहानियों के बारे में कहा है कि वे कहानियाँ

कल्पना के भीतर से नहीं बनी। उह जनेन्द्र ने बनाया नहीं—जो देखा उसे कहने की बाध्यता में स कहानी ने स्वयं रूप ग्रहण कर लिया। यह जन द्र के यथाथवादी रचनाकार का एक पहलू माना जा सकता है। इस पर अभी तक आलोचक का ध्यान नहीं गया है।

मैं इस सदभ म जनेन्द्र के अपने शब्दों को ही उद्धृत करना चाहूँगा। जनेन्द्र ने अपने कथा साहित्य की रचना प्रक्रिया व उत्स पर विचार करते हुए लिखा है 'शुरू में जो कहानीया लिखी गईं वे मरे उस समय व जीवन से जुड़ी रची जा सकती हैं। उनको प्रेरणा अमुक रचना से नहीं आई होगी, क्योंकि वह बिन्कुल जुड़ी हुई थी मरे तात्कालिक जीवन से निमित्त कुछ बन गया हो, वह बात जुग है। अपनी स्पर्धा गोपक कहानी व उन्मुख के बारे में जने द्र ने पूरा विस्तार फैलाकर जा बात कही है वह भी मरे इस कथन की पुष्टि करती है कि जन द्र के अपने परिवेश व भीतर स कहानी पूरती रही है। एक सम्पादक का कहानी दन का वायना कर जनेन्द्र इस धि ता म एक दिन दूब गये कि कल कहानी दनी है लकिन कहानी है कहा। कस निय और क्या निम्न ? कल कहानी दन की कि' और मैं ऊपर तारे देख रहा था। तगा रि एक तारा बहुत बग है और बहुत दूर। और मैं कुछ नहीं हू। और मैं तारा नहीं हो सकता। कभी लड़ी म एक मूत्र मन म भट कर टकराया रि यदि मैं अपनी चाह को तार म बिठा दू ता कुछ हाथ नहीं आणगा। अर्थात् आप्रती आदग वा' वृथा है। महत्वावाधा स अणर चलें और एक बाहर म कही जा'। प्रति ष्टिन कर न ना अत व्यथता म हागा पूणता हाथ नहीं लग सकती। वस एसा एक मूत्र गा था, उम समय मन म घटनात्मक कुछ नहीं था। इस मूत्र को— मूत्र करने व लिए अनादान दा चरित्र अवनार पाते ह। वन उन दा प्रतीक पात्रा का वन अनबा मे स्पर्धा कहानी बनती बनी गई। ता अधिकांश रचनाए अप्रति मिठान को अपने निकट मूल करने की प्ररणा स बनी है। मेरी अधिकांश रचनाए साबता हू कि साठ प्रनिगन एनी हागी।"

नयी कहानी का समय त इस सिद्धांत मून से कहानी रचना म विन्वास नहीं करना। जिस मूत्र को वह कहानी व लिए आनन्दक समभता है वह है

भोग हुआ जीवन, मही हुई पीडा, अनुभूत किया हुआ सत्य, देखा हुआ हृदय विपाद। लेकिन क्या सब कुछ आत्मानुभूत ही साहित्य है? क्या समस्त लखन स्वकेन्द्रित सत्य का अनुभूत प्रयोग मात्र है? क्या आज का कहानी लेखक मायताओं व विघटन और आस्थाओं को टूटने का सारा दुःख स्वयं भेलने का दावा कर सकता है? भेलने और भोगने की सीमाएँ हैं—भोगना सही है किंतु लेखन का वही मेरुण्ड बने ऐसी अनिवायता को लाद लेना एक सीमा तक आरोपित दण्ड है। उसे भी स्वीकार करो किंतु इस ही अंतिम सत्य न माना। मैं जन-द्रव्य मिद्धात सूत्रों में जीवन दृष्टि को पा लने की बात समझ पाता हूँ और इमीलिए केवल भोग हुए दण्ड तक साहित्य सृष्टि को सीमित नहीं करता।

अब प्रश्न यह उठना है कि क्या जनेन्द्र ने जिन सिद्धांत सूत्रों की विवृति के लिए कहानियाँ लिखी व सिद्धांत जन-द्रव्य नशन के हृदय तत्त्व दर्शन व सांत्विक दृष्टि को संशय दृष्टि नहीं बनने देना चाहिए। जनेन्द्र की दृष्टि में सगण्यो का घटाटोप होने का साथ एक विचित्र उलझन मिलती है। यदि सगण्य जीवन व्यापी है तो उसका होना जनेन्द्र से से क्यो बहिष्कृत ही, लेकिन उलझन में पाठक को छाड़ देना भी क्या लेखक का काम्य हो सकता है। मैं इस प्रश्न को जनेन्द्र का गण्य सही समाधान तक पहुँचाने का प्रयत्न करूँगा। जनेन्द्र ने स्वयं कहा है कि कहानी लिखना तो एक भूख है जो निरंतर समाधान पाने की कोशिश करती रहती है। हमारे अपने सवाल होते हैं, घवाए होती हैं चिंताएँ होती हैं और हमें उनका उत्तर समाधान ढोजने का, पाने का सतत प्रयत्न करते रहते हैं। हमारा प्रयोग होत है। उपाहरणों और मिसालों की खोज होनी रहती है। कहानी उस ढोज का प्रयास का एक उदाहरण है। वह एक निश्चित उत्तर नहीं दे पाती पर यह अलवत्ता कहती है कि शायद उत्तर इस रास्ते में मिले। वह सूचक होती है कुछ सुभाव देती है और पाठक अपनी क्रिया का सहारा उस सूत्र को ल लेते हैं।

जनेन्द्र ने कहानी में प्रश्नों के उत्तर पाने की सभावना ही मानी है—अंतिम उत्तर वे कहानी में नहीं मानते। इमीलिए सगण्य की भूमि उनकी कहानी

मे जितनी स्पष्ट होती है उतनी समाधान या उत्तर की भूमि नहीं मिलती। पाठक की उत्सुकता बढ़ती है संशय सघन होता है और वह भ्रमित सा होकर उन पात्रों से बार बार पूछता है कि यह तुमने क्या किया ? क्या तुमने आप्रह के आगे समर्पण किया ? क्या तुमने अनीति को स्वीकारा ? क्या तुमने नग्नता में अहिंसा का स्वरूप देखा ? कैसी है तुम्हारी यह निस्संगता और तटस्थता जो हिंसा को पनपने दे रही है ? और पाठक जिनासाओ के घुमावित चक्रवाल में भ्रमित हो माया पकड़कर बैठ जाता है।

क्या कहानी के माध्यम से सद्भावितक ऊहापोह की यह गौली उपादेय हो सकती है ? क्या कहानी की सफरता पाठक को सिद्धांता के विचार जगत में पहुँचाने में ही है ? लीजिए मैं एक कहानी के माध्यम से यह प्रश्न उठाता हूँ। कहानी का शीर्षक है 'नीलम द्वीप की राजकन्या। कहानी बहुचर्चित रही है। इस संशय की द्वातात्मक स्यादवादी कहानी ठहराया गया है। अर्थात् है भी और नहीं भी है 'गामद नहीं ही है, और गामद है भी, यदि नहीं है तो समका प्रतिपादन नहीं हो सकता और यदि है भी तो भी वह अनिश्चनीय है।' इन प्रकार जो अतिम सत्य है उसे पा लेना मानो असम्भव है। एक समीक्षक के शब्दों में "यह कहानी जनेद्र की कल्पना का वही नगर है जिसमें चलकर वह संशय के सत्य तक पहुँच सकते हैं। यह दूसरी बात है कि हवा में अगुलियों से बनाया गया उनका यह नगर कोई नगर न हो कर, नगर की कल्पना मात्र हो, समकी रखाएँ घुएँ की हा, औरहायलगतें ही पिघलकर मिट जाती हो, लेकिन वह है कल्पनाका नगर और रहेगा कल्पना का। ऐसा नहीं कि नगर वस्तुजगत का यह काल्पनिक निर्माण ही इन कहानिया का दोष है वरन हिंदी कहानी के विकास का दमना जाए तो जनेद्र पहले सख्त होने, जिहोने अपनी मायताआ के लिए कल्पना की एक नई दुनियाँ खड़ी की और उसमें रक्त मांसहीन पात्रों की परछाया दिखाकर कथानक का घोला सड़ा किया गया और उसके भीतर से उभारने की चेष्टा की। विचारदर्शी जनेद्र को जीवन के प्रति भारी सग्य है। इसलिए जब व 'रत्नप्रभा' जसी कहानिया में एक नारी की कल्पना करते हैं तो लगता है कि वह मोम की मुडिया है। कुल मिलाकर हमें इतना ही

मिलता है कि उसके पास मोटर है, सीफा है, महल और रुपये हैं वह जमुना जाती है और आती है और एक किताब बेचने वाले के प्रति सदय हो जाती है। कमाल तब है जब वह उसे हटरो स पिटवाती है। जनेन्द्र की रटाप्रभा ऐसा ही अवास्तविक और नकली है जो अपने रचनाकार को एक तरुण विवास्वप्नदर्शी बालक को बगल में ला बिठाती है।

मैंने जो सवाल उठाया था उसका व्यापक विस्तार ऊपर के उद्धरण में देखा जा सकता है। किन्तु जनेन्द्र की पात्र सृष्टि को इसी तक के द्वारा डिमिम नहीं किया जा सकता कि वे कल्पना द्वारा निर्मित होते हैं तथा उनकी सृष्टि में केवल मिथ्यात्व का अन्वेषण आसानी से होता है। मैं समझता हूँ कि प्रत्येक लेखक कल्पना के योग्य सत्त्विय सृष्टि करता है। कल्पना का अर्थ आरोपित मिथ्यात्व न होकर मभाय सत्य ही है। जनेन्द्र की रचना का उत्स विचार में होना है। विचार और अनुभव के बीच की खाई जो जनेन्द्र जिन रूप में पाठते हैं वह साधारण सेखर स भिन्न कानि की पद्धति है। जनेन्द्र का विचार पण इतना प्रबल है कि वे अनुभव की कसौटी की उपेक्षा करते हुए अपने तन्त्रजाल को फलास चलते हैं। इस प्रकार उनकी सृष्टि में विचार का तानाबाना ही लक्षित होता है अनुभूति के लिए गुणादिस कम हा रह जाती है। हो सकता है जनेन्द्र में इस कथन का एकदम अस्वाकार कर दें और अपनी अनुभूतियों का रचना में समुक्त करने का दावा करें। किन्तु मैं उनके दावे को मानने की विवशता में नहीं पड़ना चाहूँगा। प्रश्न यह उठता है कि जिन विचार का मैंने उनकी रचना का मूल प्ररक माना है क्या वह जनेन्द्र की अपने निजी जीवन से समुक्त होता है। और क्या जनेन्द्र अपने विचारात्मक घरातन पर जीवन जीने का उपक्रम करते हैं? यदि एसा है तो निश्चय ही उनकी कानिया में प्रामाणिकता की स्थापना हो जायगी और फिर विरोध के लिए अवसर ही रहेगा। किन्तु विचार और अनुभूति का सम्बन्ध 'साय' जनेन्द्र स्थापित नहीं कर पाते। 'गवा' कारण उनका अपना व्यक्तिगत ही है।

जनेन्द्र अपने व्यक्तिगत में प्रवृत्त नहीं हैं। समझने का विचार की सरलता है और 'व्यवहार' की। व गांधीवादी अहिंसा के समयक होने पर

भूमिका

भी अहिंसक का आचरण शायद निभा नहीं पाते। इसीलिए अपने पात्रों को अहिंसा के उस स्तर पर पहुँचा देते हैं जहाँ पाठक नहीं पहुँच पाता। उनका पात्रों की पीड़ा को समझ पाना सरल नहीं है। क्योंकि वह पीड़ा जैनेन्द्र के विचार से सम्भूत है जनेन्द्र का प्रताडित अहंकार उस पीड़ा में समाया हुआ है जिसे हम अहंकार का विगलन कहते हैं वह जनेन्द्र की काम्य तो है कि तु जनेन्द्र ने उस काम्य की अभी तक उपलब्ध नहीं किया है। कारण स्पष्ट है कि जनेन्द्र अहंकार में इतने गहरे उतरे हुए हैं कि अभी उससे मुक्त होना का क्षण व पा नहीं सके हैं। जब इनका बौद्धिक विमर्श श्रद्धा, भक्ति और प्रेम से द्रवित होकर अहंकार के पिंजरे से बहर निकलगा तभी जनेन्द्र अपनी रचनाओं में श्रद्धा के साथ पात्रों को उतार सकेंगे। जो आलोचक उनका उलझ चिंतन पर आक्षेप करते हैं वे जनेन्द्र के व्यवितर में शोचनीय इम अहंकार की ठीक प्रकार समझे नहीं हैं। जनेन्द्र की अहिंसा भावना में भी यही अहंकार छिपा बसा है जो जनेन्द्र की सरलता से व्यक्त नहीं होने देता। मरी यह बात जनेन्द्र का चिंतक नहीं समझे कि तु मैं जैसा अनुभव करता हूँ वसा लिखने के लिए बाध्य हूँ। बुद्धिबल से पात्रों का तो शुद्ध अहिंसक बनाया जा सकता है और नृपण साध्यात्मिक। स्त्रियों कहानियाँ से मन में तीव्र खोप और मथन उत्पन्न होता है, उत्तेजना और आवग उमडता है, सात्विकता और साधना नहीं उपजती। गार्त स्निग्ध प्रभाव के लिए जिम वातावरण की अपेक्षा होती है वह भी जनेन्द्र की कहानियाँ में विरत है। आत्मपीडन से ग्रस्त उनके पात्र पाठक का आस्वस्त कर भी कस सकते हैं। कि तु यह नवग्रामी दस्तान मथन पीडन और उत्तेजन ही जनेन्द्र के कथा साहित्य की शक्ति है। इस शक्ति का आलोचक ने पहले स्वीकार किया था कि तु सन १९६० के वाँ कथा साहित्य में जो परिवर्तन आये हैं उनमें जनेन्द्र की भवा, शक्ति सामर्थ्य और गली का अस्वीकृत करने का फल चला पया है। जो जनेन्द्र की नहीं समझते उनमें कुछ कहना व्यर्थ है कि तु जो जनेन्द्र के कथा साहित्य की शक्ति से पूरी तरह परिचित हैं उनमें मरी यही निर्वान है कि व जनेन्द्र के प्रदय को उसी रूप में स्वीकार करें कि तु रूप में प्रेमचंद ने स्वीकार किया था।

इधर पिछले तीन-चार वर्षों में जैनेन्द्र ने एक उपयास 'भुक्ति बोध' और १०-१२ कहानियाँ लिखी हैं। इन कहानियों में सदाशिव में उठी चर्चाओं की भाँति मैं यहाँ करना चाहता हूँ। पहली बात तो यह कि नयी कहानी के नामकरण के साथ एक दलबद्ध योजना भी 'अनजाने' तैयार हो गई है। अनजाने शब्द को बहुत से पाठक गलत कह सकते हैं क्योंकि उनके विचार में नयी कहानी के साथ योजनाबद्ध दल संगठन हुआ है। जिस तरह कुछ विशेष नामों को लेकर वर्गीकरण होने लगा है वह भी दलीय दृष्टि से ही हो रहा है। रचनाकार की खानेबंदी पहले बाधों के सहारे होती थी अथवा नये पुराने के आधार पर होने लगी है। 'जैनेन्द्र की विज्ञान' और अविज्ञान शीर्षक कहानियों पर जो चर्चा हुई वह जैनेन्द्र को न समझने के कारण नहीं बरन् जानबूझ कर जैनेन्द्र को समझने से इंकार करने के कारण ही अधिक हुई है। जैनेन्द्र की स्वीकृति से इंकार करना नये पुराने की खानेबंदी का एक पहलू है दूसरा वैचारिक पहलू भी हो सकता है जिसमें संवेदन का यथाथ आत्मानुभूति का चित्रण आधुनिकता का ग्रहण मानव की स्वीकृति और कथ्य की प्रमाणिकता आदि शामिल है। मैं इन पहलुओं पर बाद में विचार करूँगा पहले जैनेन्द्र की नयी कहानी के सदाशिव में अस्वीकृति पर कुछ चर्चा करना चाहता हूँ।

कहा जाता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद देश में वैचारिक दृष्टि से भी नवीन युगबोध आया है। गणतंत्रात्मक शासन की स्थापना के द्वारा व्यक्तिगत सत्ता फिर से उद्भूत हुई है और पुरातन परम्परावादी जड़ता से व्यक्ति ने अपने को छुड़ाने का स्वप्न ही नहीं देखा उपश्रम भी किया है। इस परिवर्तन का परिणाम यह हुआ कि विचार के सभी धाराओं पर पुनर्मूल्यांकन प्रारम्भ हुआ और हमने उस प्रामाणिक माना जो हमारे मन में बिनाह या सघप पदा करने वाला था। जो जड़ता से गृहीत होता आ रहा था वह स्वयं छूटता सा दीखने लगा। जिनकी लक्ष्मी ने इन यथाथवाणी तत्वों को उनकी समग्रता में ग्रहण किया व अपने लेखन में प्रामाणिक और स्पष्ट माने गये, शेष पुराने लेखकों को मोधरीधारवाचक हृषियार की तरह निष्कर्ष ठहरा दिया गया। यह निष्कर्ष भी नये कहानिकारों ने स्वयं ही कर लिया कि कौन आधुनिकता बाध से समुक्त यथाथ

वादी प्रामाणिक लेखक हैं और कौन मीयरीघार वाला व्यक्तिगत कृथाओं एक विमर्गतिथा से पीडित कर्दधित लेखक हैं। इन लेखकोपर यह आरोप भी लगाया गया कि य अपने समय और यथाय मडूबे न होने के कारण नितान्त पसनल, व्यक्तिगत स्वर से आपूण थे। इस काल के लेखको की रचनाआ को कविता के इतिहास के सदस कहानीका रीतिकाल कहा गया। "लेखक की अपना दमित वासनाआ और कृथाआ से ग्रस्त उपजीवी पात्र (इस रीतिकालीन कहानी मे) अवतरित होने लगते हैं। क्रम से उद्भूत अपने परिवेश म सास लेता सामाजिक जडा वाला मनुष्य वही रुका रह जाता है और दीदी तथा भाभी या वहिन जी के रिश्त चाल व्यक्तिथा म कामुकता कसमसाने लगती हैं। भाभीवाद और दीदीवाद का यह युग बीते अभी बहुत दिन नहीं हुए।'

स्पष्ट है कि ऊपरका यह उद्धरण जैने द्र क कथासाहित्य से चस्पा कर दिया जाता है और जनेद्र नये कहानीकारा की दृष्टि म रीतिकालीन सवेदना वाले लेखक ठहरत हैं। मैं रीतिकाल शास्त्र से जो समझ पाया हूँ वह काम वासना या शृंगार भावना की अभिव्यक्ति के साथ नारियो के प्रति ललक का द्योतक है। नारिया की सृष्टि म यौन सम्बन्धा का उद्याम वग भी रीतिकाल जसा ही इन कहानिया म होना चाहिए। कहा जाता है कि जने द्र के नारी पात्रा म यह दमित अतृप्ति, कामवासना की कसमसाहट है उनक त्याग या समपण म कोद उदात्त भाव नहीं है। मैं गन्गा की बहम म न पडकर केवल इतना कहना चाहता हूँ कि जने द्र क विचार दर्शन को न समझ कर उनक नारी पात्रो म केवल कामुकता देखपाना एकांगी दृष्टि या पक्षपरीय दृष्टि का फल है। जने द्र क नारी पात्रो का देह-समपण भी एक विशिष्ट भूमि पर हुआ है जोर वह पीडा के दस को उभारने क साथ चुनीती भी लेकर आया है। यदि रीतिकालीन शृंगार भावना जने द्र को अभीष्ट होती तो वे प्रेमचन्द स पहले के कथा साहित्य मे जीवित रहते द्विवेदी युग से भी पहले के लेखक म फँक दिय जाते प्रेमचन्दोत्तर कथा सृष्टि क अप्रदूत न बन पाते।

रोमानी अनुभूतियो का विप्रण कथा साहित्य का वष्य विषय रहा है। आज के नये कहानीकार भी इसे बचा नहीं पाय हैं। मैं समझता हूँ कि इमे

का संचार होता है। यदि इसी भावबोध को आधुनिकता के लिए ग्रहण किया जाए तो जनेन्द्र भी आधुनिकता से दूर नहीं ठहरते। उन्होंने समाज के भीतर से व्यक्ति को प्रकट है। व्यक्ति है तो समाज का संगठन भी बनता है। निर्वैयक्तिक समाज संगठन की बात जनेन्द्र ने कही नहीं कही। फलतः जनेन्द्र उस बोध से अवगत रहते हुए कहानी लिखते रहे हैं जो व्यक्ति को उद्बलित करता है और समाज को व्यक्ति माध्यम से आन्दोलित।

कभी कभी ऐसा भी होता है कि कहानीकार का अपना परिवेश उमसे छूट जाता है और वह किसी कल्पित परिवेश को अकित करने में लीन हो जाता है। रोमांस और भावुकता पूरा कहानियों की चरम परिणति ऐसे अथवाय बाध में होती है जो केवल कल्पना की सासों के ताने बाने पर निर्भर करता है। कल्पना की यह रगीन दुनिया प्रायः सभी लेखकों के साम होती है किन्तु केवल रगीनी ही कहानी नहीं हो सकती। जनेन्द्र ने अपनी प्रारम्भिक कहानियों में कुछ रोमान्सी रगीनियाँ समेटी थीं किन्तु उनका विचार पक्ष उन रगीनियों में डूब कर सोया नहीं था। जनेन्द्र की दृष्टि भल ही आधुनिकता के तथा कथित मूल्य पर न रही हो किन्तु सहज स्वाभाविक रूप से वे जो लिखते रहे थे वह विचारों को उहोपोह से ओतप्रोत था और एक सीमा तक वह विचार आधुनिक कहा जा सकता है।

जिस सामाजिक चेतना को अत्यधिक स्पष्ट और उजागर करने का आग्रह आज का नया कहानीकार कर रहा है वह एक अथ नयी अभिव्यक्ति है। मानव मानव के बीच उभरते आचार धारण करते या टूटते सम्बन्धों को उनके सभी समाज सम्बन्धों में अकित करना कहानीकार के लिए आवश्यक हो गया है। सामाजिक चेतना को नये भावबोध का आकार बनाते ही रूढ़ियाँ बजनाओं अथ विश्वासों जडमायनाओं और मिथ्याचार संहिताओं का खोखलापन उदघाटित करना आज का रचनाकार के लेखन में समाविष्ट हो जाता है। जनेन्द्र का स्वातन्त्र्य पूर्व कहानियों में इस प्रकार की अनेक चुनौतियाँ हैं जो रूढ़ और जड का खड खड कर समाज के परम्पराभुक्त भाग को बदलने का संकेत देती हैं। जनेन्द्र ने यह चुनौती न तो किसी पूर्व निश्चित योजना के

रूप में प्रस्तुत की है और न उनका ध्येय यह रहा है कि सामाजिक चेतना की स्थापना के लिए कहानी लिखी जाए। कहानी लिखी गई और जा कुछ कहा गया उसमें से यदि कोई चुनौती, प्रहार या आक्रोश निकल सका है तो वही स्वाभाविक है, कहानी को वही सहज परिणति है।

जैनेन्द्र की कुछ कहानियों में कतिपय सैद्धांतिक तर्क भी दूढ़े जा सकते हैं। कोई उनकी कहानी को पढ़कर गायद उन्हें सत्याप्रही ठहरा दें, काइ उनकी अहिंसक शक्ति का सधान करे, कोई कह सकता है कि जनेन्द्र नतिक मूल्यों को परीक्षा का उपक्रम करते हैं। काइ कहगा कि जनेन्द्र गांधीवाद की स्थापना के लिए चरमअहिंसा की कल्पित कल्पना करते हैं। किसी का मत होगा कि जैनेन्द्र ने अपनी वचारिक सम्पदा को उलझे हुए रूप में कथा में ढाला है जो पाठक के लिये कम और स्वयं लेखक के लिए अधिक है। इसी प्रकार के और भी अनक आरोप अभिप्राय जनेन्द्र की नयी पुरानी कहानियों पर पाए जा सकते हैं। जनेन्द्र इन आरोपों का उत्तर प्रतिवादी बनकर नहीं बरन केवल एक और कहानी लिख कर चुपके से प्रस्तुत कर देते हैं। 'विज्ञान और अविज्ञान' शीर्षक कहानियाँ उनके भीतर के मथन का प्रतिफलन ता है ही किंतु व आज के नैतिक मूल्य एवं आधुनिक बोध को भी स्पष्ट करनी हैं। विज्ञान केवल देह की माप पर टिकी है आग की माप विज्ञान की न तो अभीष्ट है और न गायद उसके लिए संभव हो। जो कुछ मापा जा रहा है वह विज्ञान की अपूर्ण दृष्टि का प्रतिफलन है। पार्थिव दृष्टि को इस कहानी में लेखक ने नयी जिन्दगी के परिप्रेक्ष्य में रख कर आका है। इस कहानी के द्वारा भी जनेन्द्र न एक सत्य का इंगित किया है, सत्य का प्रतिपादन न तो उन्हें अभीष्ट और शायद पाठक को ही अभिप्रेत हा। चुटीला सकेत प्रतिपादन से वही बढकर है।

आज के कहानीकार यथाथ चित्रण पर अधिक बल दे रहे हैं। उनका कहना है कि हमारी कहानी प्रामाणिकता पर आधित है। कल्पना के मोहक चित्र, जिहे मिथ्या चित्र कहना अधिक सगत होगा, आज की कहानी में नहीं है। जैनेन्द्र ने इस सम्बन्ध में किसी अतिवादी स्थिति को स्वीकार नहीं किया। यथाथ चित्रण के लिए जनेन्द्र ने किसी भी आरोपित मर्यादा अर्थात् प्रामाणिकता

आदि का दम नहीं किया। जने द्र का कहना है "जो हा रहा है या और ज
 दम चाहत हैं इन दोनों के मध्यमदा व्यवधान रहता है। लेखन का सारा व्यापार
 म व्यवधान में चलता है। इच्छा भावना और कल्पना, रचना के अनिवाय
 तत्त्व हैं। जो है और होना चाहिए इनके द्वन्द्व में से ही लेखन की प्रेरणा
 उद्भूत होती है। यह कैसे हो सकता है कि यथाथ में मैं सौ फीसदी सिद्ध
 अनुभव करूँ। कारण, मैं चाहता अवश्य उससे अधिक जो हूँ। जिसे सौ
 फीसदी यथाथ कहा जाता वहाँ कामना और घटना के बीच अंतर नहीं रह
 जाना चाहिये। लेकिन क्या ऐसी स्थिति बन पाती है? यदि बनती मान ली
 जाए तो वहाँ समय समाप्त हो कर रह जायेगा। दूसरे शब्दों में पुरुष का
 अथ पुरुषाथ मृत हो जायेगा। कुछ है जो यथाथ चित्रण से परे है उसका सकेत
 साहित्य में अनिवाय है। जो सर्वांगत यथाथ चित्रण का दावा करते हैं वे जानते
 नहीं कि क्षायद वे दम कर रहे हैं। प्रत्येक यथाथ के धारण में लेखक स्वयं भी
 रहना है। अतः वह यथाथ को अपने पन में से गुजार कर ही प्रस्तुत कर पाता
 है। यदि मेरे पन से किंचित रचकर यथाथ आया तो वह स्वयं निरपेक्ष यथाथ
 बँस हुआ। यथाथ के भेद प्रभेद इसी तथ्य का सनेत करते हैं। कोई लेखक
 चरल बाह्य यथाथ के आधार पर नहीं लिख सकता। ऐसा हो तो उसमें
 सद्यन्त की यथावश्यक मात्रा न आ पायेगी। लेखन के लिए अनुभूति की अनि-
 वायता सदा बनी रहेगी और वह नितात निस्संग यथाथ चित्रण के लिए चुनीती
 होगी। परम सत अनुपलम्प्य अर्थात् आदर्श माना गया है। उस कथ्य में यही
 सार है।"

आज की नयी कहानी में अकहानी या एटोस्टोरी जसी विधा की चर्चा
 भी मुनी जाती है। गायन इसके मूल में यही है कि नानी दानी की भुलावे की या
 रोमानी तज की कहानी को विचार प्रधान कहानी ने मच स हटाया था। अब
 विचार का तत्त्व इतना शीघ्र हो गया कि घटना की किसी योजना की भी
 उम्मे आवश्यकता नहीं रह गई है। कहानी के अनादि इतिहास में यह एटोस्टोरी
 कही किट यथगी इस पर अभी तात्त्विक दृष्टि से विचार नहीं हुआ है। फिर भी
 अकहानी या ऐंटी स्टोरी की चर्चा आज होनी रहती है।

जनेन्द्र हम शब्द को स्वीकार करने के पक्ष में नहीं है। उनको मान्यता है कि कहानी अपनी विधा में परिवर्तन करती रही है। किसी एक लीक पर कहानी चले, ऐसी विवशता उसकी नहीं है। किन्तु वह एटी होकर स्टोरी, या कुछ भी, साधकता प्राप्त करे, यह भी संभव नहीं है। हा अबहानी शब्द से सार अथ निकल सकता है वह यह कि घटनाओं में हठ पूर्वक संयोजन न हो, यही शायद एटी स्टोरी का आशय हो। आग्रह पूर्वक घटनाओं को जुटाने और उनमें फिर तुक डालने के भी मैं विरुद्ध हूँ। संयोजना तो ठीक है, किन्तु हठपूर्वकता से किया गया संयोजन कहानी के स्वरूप को दबोचने वाला होता है।" इस सदन में जनेन्द्र अपनी एउ कहानी को उदाहृत करते हैं। उनकी 'इक्के में शीपक कहानी संयोजनविहीन कहानी है। क्या का चीखटा कस कर किसी संयोजन को यत्नपूर्वक उसमें नहीं रखा गया है। लेकिन संयोजन के बाद कहानी का वहाँ अभाव है ऐसा जनेन्द्र नहीं मानते। उनका कहना है कि मुक्त मानसिकता के आगे यह कहानी एक प्रश्नचिह्न छोड़ जाती है। अर्थात् आशय का अभाव वहाँ प्रतीत नहीं होता और संयोजन ही कहानी को साधकता प्रदान करता है।

कहानी में गति और स्पन्दन की उपस्थिति वस्तुनिष्ठ नहीं होती। भाव वस्तु नहीं है। ऐसी अनेक कहानियाँ जनेन्द्र ने लिखी हैं जिनमें भाव ने ही वस्तु का रूप ग्रहण कर लिया है। भूतवाली उनकी प्रसिद्ध कहानी में वस्तु का व्यपगत ढाँचा नहीं है। किन्तु वह कहानी गतिशीलता से स्फूर्त है, अतः घटना के अभाव में भी वह कहानी है। अबहानी उभे नहीं कहा जाएगा जिस कहानी में घटना निभरता न हो, क्या वह कहानी नहीं होगी। अगूर का छिलका पतला होता है, लेकिन छिलका होता है। कहानी की घटना भी छिलके के सदृश ही है जितना सूक्ष्म वह छिलका होगा अगूर उतना ही अच्छा होगा। जनेन्द्र की मान्यता है कि कहानी वस्तुतः माध्यम का माध्यम नहीं लेती उसका तो माध्यम पद चित्र है। मन में चित्र अंकित हो जाता है और कहानी रूप धारण करती जाती है। शब्द के अभिव्यक्ति के माध्यम से विस्तार करना लक्ष्य या निवृत्त लिखना है। इसलिए अबहानी में पदविस्तार यून और चित्रांकन अधिक हो तो ठी

ही है, किन्तु उसे कहानी कह कर रेखाबद्ध करना जनेन्द्र का प्रिय नहीं है ।

कहानी के शिल्प के सम्बन्ध में जनेन्द्र के विषय में प्रारम्भ से ही विचित्र धारणाएँ बनती बिगड़ती रही हैं । कुछ समीक्षकों का मत रहा है कि जनेन्द्र गिल्पराडमुल हैं । दूसरे कहते हैं कि जनेन्द्र की चेतना गिल्प को अपनी पद्धति से नया रूप देती रही है, वे एक सफल एवं सचेत गिल्पी हैं । आज की कहानी में रूपहीनता को अधिकाधिक प्रथम मिल रहा है । उसका गिल्प वस्तु के साव्य सश्लिष्ट होकर शिल्पहीनता का रूप धारण करने लगा है । जनेन्द्र इस रूपहीनता को स्वीकार नहीं करते । कहानी का रूप, आधार ही उसका क्लेशरथ था, शिल्प है । यणमाला के अक्षरों में जिस प्रकार नया कहानीकार परिवर्तन नहीं करता उसी प्रकार वह रूप की भी उपेक्षा नहीं कर सकता । मौलिक सत्य में वस्तु और शिल्प की अभिन्नता का अनिवाय है और वह सहज भावसम्पन्न स्थान बना लेती हैं । वस्तु और गिल्प दोनों रचनाकार में सश्लिष्ट अनुभूति से जुड़ जाते हैं अतः इन्हें अनायास सिद्ध मानना चाहिए । अमौलिक लेखन रूप शिल्प को लेकर नाना प्रयोग करते हैं किन्तु उपलब्धि नहीं पाते । केवल में फाम प्रतीत होने को रह न जाय यह चेष्टा आप्रही और आरब्ध चेतना की परिचायक है । फाम के प्रति निश्चितता निश्चकता मुक्त चेतना का धर्म है । रचनाकार के भीतर जो उपलब्ध है उसको प्राप्त करने और प्रेयणोय बनाने में जो आयास है वही शली और गिल्प का स्रष्टा है कि यास इसी में से निर्माण पाता है । अतः उसे त्याग्य क्यों समझा जाए । जनेन्द्र इसी सहज और अनिवणीय फाम को मानते हैं, इसमें अधिक शली गिल्प का कोई साचा होता है तबे जनेन्द्र उसकी चिन्ता नहीं करते और उसे जानने का प्रयत्न भी नहीं करते ।

मैं इस पुस्तक में जनेन्द्र की विचार धारा को पूणता के साथ प्रस्तुत करने का दावा नहीं करता । जनेन्द्र का विचारक रूप दान की सीमाओं तक फला है त्रिगे जनेन्द्र भने ही अगोकार न करे किन्तु हिन्दी का पाठक उसे जानता है । मैंने तो केवल कहानी के सधम में कुछ बातें ऊपर की पक्षियों में लिखने की चेष्टा की है । हो सधता है कि मेरे चिन्तन को जनेन्द्र एक भटके के साथ अस्वीकार कर दे और कहें कि मैं तुम्हारी मायताया का अनुमोदन नहीं करता—मैं वह

नहीं हूँ जो तुम समझते हो।" ऐसी स्थिति में दयनीय तो मैं हो ही जाऊंगा और दायद पाठक की दृष्टि में एक सीमा तक हतप्रभ भी माना जाऊँ। लेकिन भूमिका लिखने का अधिकार पाकर मैं वह सब कहना अपना कसब्य समझता हूँ जो ईमानदारी के साथ अनुभव करता हूँ। मैंने जैनेन्द्र की कहानी-कला पर यह भूमिका नहीं लिखी है—मेरी दृष्टि तो आज की कहानी के सद्भ्रम जनेन्द्र की कहानी पर रहो है। इसलिए इस भूमिका का क्षेत्र अत्यन्त सीमित और सतक्ष्य रहा है।

कहानी के परिवर्तित होत्रे रूप प्रतिपाद्य, शिल्प शैली आदि पर अनेक समीक्षकों के लेख प्रकाशित हुए हैं। जैनेन्द्र से भी अनेक आलोचना और पाठकों ने प्रश्न पूछे हैं जो इस पुस्तक में संकलित हैं। मैं समझता हूँ उन प्रश्नों-उत्तरों में पाठक को बहुत कुछ मिलेगा जो मेरी भूमिका में नहीं है। जैनेन्द्र से सीधे बात करने और उनके मतस्थ को जानने के लिए मैं पाठक से अनुरोध करूँगा कि वह जैनेन्द्र के उत्तरों में प्रवेश करें। जनेन्द्र को पा लेना दुष्कर है ऐसा बहुत लोग मानते हैं—मैं उस प्रवृत्ति से मुक्त हो कर पाठक से अनुरोध करता हूँ कि वे इस पुस्तक का अनुगोलन करें। समग्र जीवन-दृष्टि से अनुस्यूत जैनेन्द्र के ये उत्तर पाठक को कहानी के माध्यम से बहुत कुछ ज्ञातव्य दे सकेंगे। इस पुस्तक में भिन्न-भिन्न समय के प्रश्नोत्तर संकलित किये गये हैं अतः कहीं-कहीं पुनरावृत्तिका आभास मिलेगा किन्तु बहुत बड़ा भेद कहीं नहीं है। जनेन्द्र ने बीस वर्ष पहले जो मौलिक प्रश्नक के रूप में स्वीकारा था आज बीस वर्ष बाद उसे नकारा नहीं है। जैनेन्द्र के चिंतन में ज्यो-ज्या गंभीरता आई है त्यों-त्यों वे तत्त्व के समीप ही पहुँचे हैं यही कारण है कि बाह्य विधान या शिल्प शैली पर उनका आग्रह नहीं रहा। वे विज्ञान या पारिष्वकता से अभिभूत नहीं हुए—सहज रूप से विज्ञान को स्वीकार करने पर भी उनका भीतर पण्य से ऊपर देखने का आग्रह निरन्तर बना रहा है यही उनका चिंतन का सशुद्ध वाद्योतक है। जनेन्द्र अस्तित्ववादी नहीं, अस्तित्व को पकड़ने वाला अस्तित्व है। अतः उनकी कल्पना का बोन आधुनिकता के किसी सीमित आयाम में न बंधकर व्यापक आम्बिकता के बीच से जुग रहता है। इस समझ लेने पर जनेन्द्र की कहानी विषयक विचार किसी भी निकष पर

कस जा सकते हैं। इस पुस्तक में सङ्कलित प्रश्नात्तरो में भी जैनेन्द्र की कहानी रचना प्रक्रिया का स्वरूप समझा जा सकता है। यही इस पुस्तक की सायकता है।



अपनी कैफ़ियत

मेरा कहानी लिखना कैसे शुरू हुआ, यह याद करता हूँ तो विस्मय होता है। विस्मय शायद इसलिए कि औरों की बात मैं नहीं जानता। मेरा आरम्भ किसी तैयारी के साथ नहीं हुआ। जब तक चाहता रहा कि कहानी लिखू तब तक सोचता रह गया— 'कैसे लिखू ?' और जब लिखी गई, तब पता भी न था कि यह कहानी है।

बात यो हुई। बकत खाली था और मैं नहीं जानता था कि अपना क्या बनाऊँ। दुनिया में एक माँ की माफ़त मेरा नाता था। शेष में दुनिया अलग थी और मैं अपने में बंद अलग था। एक बूद अलग हो कर सूख ही सकती है, मैं भी सूख ही रहा था।

पर शिद्दगी एक अकेले तो चल ही नहीं सकती। निवाह को कुछ तो चाहिए। उसके लिए कमाई चाहिए। तेईस चौबीस बरस की उमर हो जाय तो आदमी को कुछ करने की सुघ लेनी चाहिए। सुघ तो लेता था पर जुगत कुछ न मिलती थी। नतीजा यह कि दिन के कुछ घण्टे तो लाइब्रेरी के सहारे काटता था, बाकी कुछ सामान्यपाली और मटरगश्ती में।

इस हालत में पहली जो कहानी हुई वह यों कि एक पुराने साथी थे, जिनका ब्याह हुआ। भाभी पढ़ी लिखी थीं। पत्रिका पढ़ती थीं और चाहती थीं कि कुछ लिखें जिससे उनका लिखा छपे और साथ तस्वीर भी छपे। हम भी मन ही-मन यह चाहते थे। दोनों ने सोचा कि कुछ निखना चाहिए। तय हुआ कि बगले दानिवार वा दोनों को अपना लिखा हुआ एक-दूसरे के

सामने पेश करना होगा। शनिवार आया और देखा कि उनकी कहानी तैयार थी। हमें कुछ बात पक्क न आ सकी थी कि लिखा जाता। ऐसे एक हफ्ता दो हफ्ता निकल गये। भाभी तो भी कुछ न कुछ लिख जाती थी यहाँ दिमाग दुनिया भर में घूमकर कोरा का कोरा रहता था। हम अपनी इस हार को लेकर मन ही मन आँधे पड़े जा रहे थे। होते होते हम जड़ हो गये, सोच लिया कि कुछ अपने से होने हानेवाला नहीं है। यह अपना निक्मामापन इस तरह तय हो चुका था कि एक दिन घटी एक दिलचस्प घटना की हमने ज्यादा स्यों कागज पर उतार डाला। जाकर भाभी को सुनाया। घटना भाई साहब और भाभी को लेकर थी। भाभी लगाइ मगर खुश भी हुई। मैं मानता हूँ कि वह पहली कहानी थी जो फिर जाने क्या हुई।

दूसरी तीसरी और चौथी-पाँचवी कहानियों का बानक मो बना कि एक मित्र सन २० २१ की गर्मागम देश सेना के बान सन् २६ २७ होते होते खाली हाथ हो गये। अब क्या करें? जमाने की जगह हा तो नेतागिरी के काम की भी सुविधा हो जाए। यों आँधी क बकन की बात दूसरी है, ठंडे बकन की दूसरी। सो मित्र—बड़े विमलक्षण बड़े योग्य—अत मे सायद पच्चीस रुपये पर एक पाठशाला मे मुख्य अध्यापक हुए। पाठशाला छोटी थी पर उनक ह्याल बड़े थे। महाशय ने तीसरी चौथी क्लास के विद्यार्थियों को लेकर यहाँ एक हाथ लिखी पत्रिका निकालनी शुरू की। मुझे लिखा कि उसमे तुम भी लिखो। कहीं पता हाना कि यह तो लेखक बनने का रास्ता बन रहा है ता मरा जी दूब जाता। सब कहना हूँ मैं ऐसी दुस्तम्भावना का बोझ तब नहीं उठा सकता था। सो मित्र का सन आना और मैं जवाब लिख भेजता। जवाब जरा सम्बा भी हो जाता और सूझ मे गो उलझता, आँक देता। इस तरह सायद छ महीने हुए हामे कि मित्र का यहाँ से पत्ता कट गया। निकल तो साय अपनी हाथ लिखी पत्रिका के अक भी उठाते लाये। उन तिनोँ एक हिलपी बुजुग कभी-कभी घर पधाग करते थे। ठाली उत्सुकता मे पत्रिका क अक उ होंने देखे और कहीं जा रहे थे तो साय सते गये।

बलो छुट्टी हुई। लेकिन दो एक महीने वा लाइब्रेरी म बंठा हुआ देखता क्या हूँ कि 'विशाल भारत मे 'थी जिने'द्र' की कहानी छपी है 'खेल'। यह 'खेल' तो जरूर मेरा है—तो क्या 'विशाल भारत' मे छपनेवाला 'थी जिने'द्र' में ही हूँ। दिल उठता था और गिरता था। जाने किस षटो वह कहानी लिखी गई थी, खेल कि अब कई जगह छपी देखना हूँ कि वह 'एक चीज' है। क्यों न हो, लोग कहते हैं तो बाहर होगी वह 'चीज'। पर सब मानिये, यदि उसके भी चीज होने का जरा भी गुमान होता तो 'खेल' वा वह खेल जैने'द्र मे न हो पाता।

कहानी का लिखना तो ऐसे गुरू हुआ, पर उसके कुछ काल जारी रहने का भेद दूसरा है। वह रहस्य यह कि शायद 'खेल' के ही पारिधमिक-स्वरूप 'विशाल भारत' से चार रुपये का मनीआडर चला आया। मनीआडर क्या आया मेरे आगे तो तिलिस्म खुल गया। इन तेईस चौबीस बरसो को दुनिया मे बिता कर भी मैं क्या तनिक उब द्वार की टोह पा सफा था कि जिमम से रुपये का आयागमन होता है। रुपा मेरे आगे फरिश्ते के मानि'द था, जिसका ज'म जान किस लोक का है। अवश्य वह इस लोक का तो है नहीं। वह अतिथि की भाँति मेरे 'खेल' के परिणामस्वरूप मेरे घर आ पधारा, तो एकाएक मैं अभिभूत हो रहा। मेरी माँ को भी कम त्रिस्मय नहीं हुआ। तो बेटे के निक्ममेपन की भी कुछ कीमत है। माँ से जया'ग बेटा अपने निक्ममेपन को जानता था। पर 'विशाल भारत' के मनीआडर से मालूम हुआ कि आदमी अपन का नहीं जान सकना। दुनिया अनि विविध है और जाने यहाँ किसका क्या मोन लग जाय। मोन भाव यहाँ असली है नहीं इस लिए उनकी तोल भी मनमानी है।

खर, फिर तो कुछ और भी लिखा। उसी उमाने की एक बात याद आनी है। पाठगाला वाले मित्र के पहने खन के जवाब म मैंने कुछ लिखना शुरू किया। उस क्या मे एक पब्लिक लीडर मच पर आते हैं जो भारत माता की याद अप्रेजी मे ही कर पाते हैं। कहानी पूरी हुई तो मालूम हुआ कि अपनी भारतमाता की भक्ति तो खासी ऊँची अप्रेजी मे वह महोदय कर

गये हैं—तीसरी चौथी क्लास क बच्चों की समझ तक वह कैसे उतरेगी ? इससे उस रचना को मैंने अपने पास रोक रखा दूसरा कुछ और लिख भेजा । पहली रचना को शीपक लिया गया था 'देशप्रेम' । वह मेरा 'देशप्रेम एक दिन दिल्ली के एक मासिक पत्र के कार्यालय में मेरे हाथों से छिन गया । पर तीन-चार महीने हो गये उसकी सूरत उस पत्रिका में देखने में नहीं आई ।

मैं डरते-डरते कार्यालय में पहुँचा । सपादक, जो मालिक भी थे, बोले कि आपका लिखा हुआ साफ नहीं था और अगुद भी था । अत हमारे सहायक गये तो उसे साफ ले गये थे । देखिये अभी इस डाक से उसकी शुद्ध प्रतिलिपि भेजी है । अब अगले अंक में वह जा रहा है ।

मैंने रचना देखनी चाही तो सपादक ने मेरे हाथों में दे दी ।

मैंने खड़े-खड़े उभे उलटा पुलटा कि मस्तक हाथ में लेकर वापस कुर्सी में आ रहा । देखता हूँ कि सचमुच ही रचना को एकत्र शुद्ध बना दिया गया है ।

मैंने सपादक से कहा कि यह रचना मुझे ले जाने दीजिये कारण निस्सन्देह वह शुद्ध तो है पर वह मेरी नहीं रही है । अपने से अधिक शुद्धता मेरा नाम कैसे उठा सकेगी ?

सपादक हँसकर बोले, जसी आपकी इच्छा ! ल जाइये । लेकिन आपकी एक कहानी तो हमारी हो चुकी है यह ले जा सकते हैं । लेकिन दूसरी देनी होगी, और कल नाम तक मिल जानी चाहिए ।

मैंने कहा कि यह कम सम्भव है ?

बोले तो रहने दीजिए यही छप जायगी ।

मैंने कहा कि इनकी शुद्ध होकर यह मेरे नाम से कैसे छप सकती है, क्योंकि मैं वहाँ उतना शुद्ध हूँ ?

बोल, तो कल दफ्तर के समय तक दूसरी रचना देने का वायदा कीजिये ।

आप कहेंगे कि क्या वह रचना खरीद ली गई थी ? नहीं, पर पैसे के अधिकार से बड़ा प्रेम का अधिकार होता है । सपादकजी का, जो कि मालिक भी थे, मेरी उस रचना पर वही अधिकार था ।

मैंने कहा कि अच्छा, कोशिश करूंगा ।

बोले, कोशिश नहीं, वायना कीजिये । कल चार बजे तक पहुँचा देने का वायदा करे तो यह ले जा सकते हैं ।

मेरी हालत दयनीय थी । लेखक को दयनीय होना भी चाहिए । उसका अधिकार केवल कर्तव्य है । लेकिन मैं अतिपरिशुद्ध अपना वह 'देगप्रेम' वहाँ कैसे छोड़ सकता था ? उस 'देगप्रेम' को अच्छी तरह काटा छीला गया था । मुझे तो ऐसा लगा कि मरम्मत से जगह जगह उस बेचारे देश प्रेम मे सही की लाली उमर आई है ।

सपादक जी बोले कहिये वायदा करते है ?

अपने देश प्रेम की बेहद छिली और रँदी दशा का देखते हुए नीची आँखों से मैंने कहा, अच्छा !

सपादक जी बोले, तो खुशी से ले जाइए ।

यह सुनते ही उस देश प्रेम को मोड़ माड़कर जेब मे डाल मैं तत्काल कार्यालय से बाहर आ गया ।

यह लगभग शाम का समय था । गर्मियों के दिन थे । घर आया, खाना खाया कोठरी से निकाल कर खटोली खुले खँडहर पर बाहर डाली और सोचने लगा कि कल क्या करूंगा । मन एक बोझ से दबा हुआ था और कल्पना उठाने पाती थी । रात हुई और उसी खँडहर पर खटिया डाले ऊपर देखता मैं पड़ा रहा । मेरे और तारों के बीच केवल शून्य था । ऐसे समय मुझे नेपोलियन का नाम याद आया । क्या वह सफल हुआ ? उसका जीवन सायब हुआ ? क्या वह सक्ति लेकर गया ? क्या उसम या किसी मे अपने आदेश को बिठाया जा सकता है ? क्या आदेश को अपने से बाहर रख कर देखना होगा ? आदेश को अपने से दूर, अलग, किसी दूसरे मे आरोपित करने से चलेगा ? नहीं

ऐसे खयाल पर खयाल आते रहे । इन्ही के बहाव मे मन मे उठा कि अच्छी बात है, एक पात्र उठाया जाय जो नेपोलियन मे अपना आदेश डालकर चले । दूसरा उसके मुदाबले का पात्र हो जो अपने आदेश के बारे में मुखर न

हो। ये दोनों फिर आपस में दूर न हो, बल्कि घनिष्ठ हों। पर ये सब विचार आपस में ऐसे घुले मिले घूमिल थे कि वे ये ही, यह भी कहना कठिन है। सब कुछ वायव्य ही था।

इसी हालत में शनैः शनैः नींद आ गई। सबेरे उठकर निवृत्त होना था कि याद आया, चार बजे तक कहानी पहुँचानी है। मन को झुझलाहट हुई। उसने विद्रोह करना चाहा। पर अपने से कोई बचाव न था, कारण मुझमें असली शक्ति ही न थी। इसलिए वचनबद्धता की जकड़ मुझसे टूट न सकती थी। अतः लिखन बठना पड़ा। उस समय रात की उठी हुई अस्पष्ट सी घुमडन-सूझ आई। बस उसका सहारा धाम में लिख चला। अतः मे पाया कि स्पर्दा कहानी बन गई है।

वह कहानी शन शन कसे बनती गई और उसके उपकरण कसे-कसे लिखने के साथ साथ मन में और मस्तिष्क में जुटते चले गये—उस विषय को यहाँ छोड़े देना हूँ यद्यपि कहानी के अंतरंग निर्माण को स्वयं समझने की दृष्टि से वह विषय काफी सगत है।

खर, कहानी हुई और उसे गुड़ी मुठी कर मैंने जेब में डाला। कहानी जसी जो स्थापन आई—लम्बी, कम लम्बी छोटी—उसी पर निष्ठी गई थी। इससे वह लपटी हो जा सकती थी उसकी तह नहीं की जा सकती थी।

उस रोज ठीक याद नहीं पड़ता कि क्यों, पर पाँच रुपये की मुझे बेहद जरूरत थी। माँ से माँग नहीं सकता था। वे पाँच रुपये अपने लिए नहीं किसी और ही जरूरी आवश्यकता के लिए चाहिए थे। खर तीसरे पहर का समय और मैं चला पदल।

फतेहपुरी पर मुझे भाई वृषभचरण मिले। बोले, कहाँ! वहाँ जा रहे हो?—ओ, यह जेब आज कस फूली हुई है? और देखते-देखते जेब से लिये-बागजो की रीस उहोंने निकाल ली।

ओफ़ोह, कहानी है! तो कहानी लिखी है! वहाँ से जा रहे हो? मैंने बताया कि अमुक कार्यालय में से जा रहा हूँ और ५६० की जरूरत

है। सोचता हूँ कि कहूँगा कि उधार ही सही, इस कहानी पर पाँच रुपये ही दे दूँ तो एहसान हो।

रूपम भाई की सलाह थी कि मैं ऐसा न कहूँ, क्योंकि उससे कोई फायदा न होगा।

खर पहुँच कर कहानी की रील सम्पादकजी को दिखलाई और ५) रु० की अपनी गरज भी जतला दी। संपादकजी लेखकों को पारिश्रमिक अवश्य और बाकी परिमाण म दे देना चाहते थे। बस, प्रतीक्षा यह थी कि पत्रिका नफा देने लगे। तब तक मन पर पत्थर रखकर उन्हें अपनी असमयता प्रकट करनी ही पड़ेगी।

मैं नहीं जानता कि तब ऐसी अटक मुझे क्या आ गई थी। मैंने कहा कि मैं तो उधार चाहता हूँ। पर संपादकजी असमय ही थे। उन्होंने कहा कि आप चाहें तो कहानी ले जाइये यद्यपि देखा जाय तो कहानी हमारी हो चुका है। पर क्या कहूँ, कहानी पर पसा देने की स्थिति तो बिल्कुल नहीं है।

लौट आया और वह कहानी फिर शायद एकाध महीने मेरे पास ही पड़ी रही। फिर एक दिन कमर में साहस बाँधकर मैंने क्या किया कि अपनी उस 'स्पष्टी' को प्रमचन्दजी के पते पर खाना कर लिया। साथ ही एक पत्र लिखा कि 'माधुरी' संपादक नहीं कहानी-सम्राट प्रेमचन्द को यह भेज रहा हूँ और छानने के लिए नहीं बस कुछ जानने भर के लिए वह साहम बन पड़ रहा है।

ढाक में डालकर घड़कते मन से जवाब का इत्तजार करने लगा। छ सान दिन में छपा बाढ़ आया, जिसमें लिखा था कि कहानी सधयवाद वापस की जा रही है। कहानी का वापसी पर चाहे मन से खिन हो होना चाहा, पर उसके सधयवा ने उस पानी-पानी कर रखा। पत्र पर प्रमचन्दजी के दस्तखत न थे।

बलो, बखेडा बटा। जिन्दगी की मुक्ति मौत में है और आशा की सफनता निराशा में। पर हाय राम, बागजा की सबसे विछनी स्तिपि की पीठ पर फीकी रयाही म अघेजी मे यह मैं क्या लिखा देखता हूँ ? हो-न हो, ये प्रेम चन्द के अक्षर है। लिखा है—Please ask if this is a translation

कहना चाहिये कि प्रेमचंदजी के परिचय का द्वार उस राह से मेरे लिए खुला। मैंने उस पर उह कुछ नहीं लिखा। सिर्फ कुछ दिन बाद एक दूसरी कहानी भेज दी। 'स्पर्द्धा' कहानी के पात्र विदेशी थे और ढग विदेशी था। उसकी एक लाचारी हो गई थी। दूसरी कहानी आस पास को लेकर थी। बस, उस अंधे के भेद से चिट्ठी पत्री शुरू हो गई।

यहाँ शायद आप प्रेमचंदजी की कहानी कला पर कुछ कहने की मुझसे अपेक्षा रखते हों। सचमुच मैं अधिक नहीं कह सकता। मैंने पहले ही निवेदन कर दिया था। अपनी कफियत देने के सिलसिले में कुछ आ जाय तो आ सक्ता है।

प्रेमचंद जी को मैं कहानी की कला के विषय में बात करने तक कभी न ला सका। यों तो कोशिश भी विनोय न की पर जब उस तरह की बात आयी वह टाल ही गये। कहानी उनके लिए निर्जीव तरव न थी। इससे उसकी टेक्नीक पर रस के साथ वह चर्चा भी क्या कर सकते थे! कहानी में मानव चरित्र और मानव हृदय उनके लिए प्रधान था। लेखन सम्बन्धी दूसरी कला-गिल्प की बातें एकदम गौण थी।

एक बार प्रेमचंद ने कहा, जने ड उपायास लिखो। मैंने कहा कैसे सखें? बोले अरे घर में नाते रिश्तेदार जो हों, बस, उही को लेकर लिख दो।

यह बात आज भी मुझे याद है। मैं नातदारों को लेकर नहीं लिख सका न ही लिख पाता हूँ यह बात बिल्कुल अलग है। लेकिन प्रेमचंदजी की सलाह पक्की है और सच्ची है। यानी प्रेमचंदजी को वह सही-सही व्यवस्था करती है। प्रेमचंदजी की कला का मूल उनकी उस सीख में बसा है। दूर वहाँ जाना है। आस पास के जीवन में ही जो जीते जागते व्यक्ति तरह-तरह के स्वभाव लेकर तरह-तरह के काम करते हुए निभ रहे हैं उनमें ही मुझ क्या नहीं पा सकते हों? किसी परिवार को ले लो। तीन पीढ़ियाँ तो मिल ही जाती हैं। उनके जीवन-व्यापार पर अंकित है उा तीनों पीढ़ियों का इतिहास।

जीवन की गति के विकास का भी उसमें से ढोधा जा सकता है। उन्हीं के मक्षिणपटु जीवन चित्र में से नीति और दगन के निचोड को भी पाया जा सकता है।

मेरा अनुमान है कि उनकी कहानिया के चौखटे धास-पास के यथाय पर से उठाकर निते गये हैं। उनकी कहानियों का प्राण व्यवहार धम है। उनके पात्र सामाजिक हैं। उनके चरित्र महान् इसलिए नहीं है कि प्रेमवदजी ने उन्हें महान् बनने देना नहीं चाहा है। सबने सभी गुण-दोषों के पूज हैं। किसी का दोष विराठ अथवा कि इतनी सधनता से बाला नहीं बन पाता कि उसी में चमक आ जाय, न किसी का गुण रिमालय की भांति धुम और अतौकिक काति देने वाला बन पाता है। औगत आत्मी की सभावनाओं से परे उनके पात्र नहीं जाते। कल्पना की प्रेमवत् उठने देने हैं, पर रोमास नक नहीं उठने देने। जैसे उन्होंने अरने को एक वत्तव्य में बांध लिया है और वह वत्तव्य उनका वत्तमान के प्रति है। मोग से और मानव की भवितर्यनाओं की अमित सभावनाआ में उनका इतना सम्बध नहीं है जितना कि मनुष्य-ममाज और उसकी आज की समस्याओं से है। वह समाज हितै पिता से छूट नहीं सकते। यह उनकी शक्ति और यही उनकी सीमा है।

एक राज बाल, जैनद्र मुक्त में प्रतिभा नहीं है। मैं तो प्नाड करता हू। महीने में दो कहानी पूरी कर दू तो समझूँ, बहुत हुआ। मुमम वह वेग नहीं है जिस प्रतिभा का लक्षण माना जाय।

इम वषतव्य को भी मैं उनक व्यक्तित्व की दृष्टि से बहुत सागणिक कह सकता हूँ। वह साधनापूर्वक साहित्यकार थे। साहित्य उनके लिए विनोद या विलास का रूप न था। वह कहानी गन्ते थे, तयार करते थे उसे निकाल नहीं फेंकते थे।

मैंने उन्हें उपयास लिखते हुए दखा है। छाटी कहानी के बारे में तो नट्टी कह सकता। गायद हो कि कहानी भी एक से अधिक बँठका में वह निमिते हों। गायद उनके उपयास में लिखने की पद्धति से कहानी के ढग पर

भी प्रकाश पड़ता हो। उनकी रफ पाण्डुलिपियों के शुरू में अक्सर उपयास के कुछ परिच्छेदा का सिनोप्सिस मैंने देखा है। पात्रों के नामों की फहरिस्त वही-कही अलग लिखी मिली है। फिर उन पात्रों के अलग अलग चरित्रों की बल्पना को पल्लवित किया गया है। जैसे —

दमयंती—साधारण सुन्दर। शील का गव रसती है। कम, पर तेज बोलने वाली। वात्सल्यमयी, पर ईर्ष्यालु इत्यादि।

इस प्रकार परिस्थिति से पृथक् और पूव पात्र की रूप रेखा को निर्दिष्ट करके चलने में शायद प्रेमचंद सुविधा देखते थे। उसी भाँति प्लाट का भी एक खाका बना लते थे। यानी, पूव परिस्थितियों में से ही परवर्ती स्थिति पैदा होने दी जाय यह नहीं, बल्कि पूव और अपर ये दोनों स्थितियाँ पहल से निश्चित करली जाती थीं। इसीलिए उनकी रचनाओं में वसी सरलता नहीं है कि पात्र हाथ न आते हो बच-बच जाते हों, उनकी रखाएँ काफी उभारदार हैं।

लेकिन जसा कि पहले कहा प्रमचंद में एन बड़ी विशेषता थी। वह यह कि वह कथा रचना का अपने पास साँचा कोई नहीं रखते थे, न साँचे कहने में विश्वास रखते थे। इसलिए यदि कभी मैंने नौसिलिये की भाँति चाहा भी कि हाथ पकड़ कर वह मुझे कहानी लिख चलना बताए तो उस दुरागा में उठने कभी मरी सहायता नहीं की। और मैं मानता हूँ कि इस मामले में मुझे अपने ऊपर रहने देना, किसी तरह का आराप मुझ पर न आने देना ही उनकी बड़ी सहायता थी।

अब मैं नहीं जानता कि मुझसे अपने लिखने के बारे में पूछा जा सकता है या क्या। पूछा ही जाय तो मैं उसका एक और चौबंद उत्तर नहीं दे सकता। कुछ कहानियाँ बाहर से लेकर भी लिखी हैं। जस कि एक अन्धा भिखारी गली में आ जाया करता था। मेरी भानजी, जो अब आकर तभीयल के मुँहसे भी बजुग बन गई है बोली मामा, इस अन्धे पर कहानी लिखो।

मैंने कहा, अच्छा !

कहानी शुरू होने में तो दिक्कत न थी। यानी कि मेरी जिंदगी चल रही है उसके अपने दायरे और अपनी व्यस्तताएँ हैं। उन दायरों को आ धूता है एक अधा भिखारी ! चलो, यहाँ तक तो जो घटा वही लिख दिया गया। आगे क्या किया जाय ? आगे जो भी हो, कल्पना के बल पर ही किया जा सकता था। इसलिए कुछ तो कल्पना को उस अधे के अतीत की ओर बढ़ने दिया, और तनिक भविष्य की ओर कल्पना की आँखा से मैंने देखा कि उसके दो बच्चे हैं और पत्नी भी है। एक छोटी सी कोठरी में रहता है जैसे-तैसे बच्चों का पेट पालता है। स्त्री ? नहीं, वह साथ नहीं है कैसे हो ? बच्चों के लिए भीख की रोटी काफी कहाँ होती है ? पेट के लिए हो भी जाय, पढ़ाई के लिए ? इससे स्त्री को भी कुछ बमाई करनी चाहिए। और वह माँ बाप बेटे के लिए पेशा करती है। और हाँ, उसीने पति की आँखें फोड़ी हैं इससे धेश्या बन कर अपने को नरक में डाले, यही उसने अपने लिए दब चुन लिया है। इत्यादि इत्यादि। बस, इस तरह वत्तमान पर जो वह अधा आया था, उसको तनिक अतीत और अनागत की ओर फला कर देखा कि कहानी हाथ आ गई। कहानी जीवन का इतिवृत्त ही तो है। यानी उसमें स्थिति से स्थित्यंतर इस प्रकार घटित होना चाहिए कि जीवन का अमाध तक उभरे। काल का कुछ स्पन्दन, कुछ तनाव अनुभव हो। वही तो कहानी का रस है। यह घटित के द्वारा अनुभव कराया जाय, या चाहे तो बिना घटना के ही मम म उतार दिया जाय। अतएव ऐसी भी सफल कहानियाँ हैं जिनमें खोजो तो घटना तो है नहीं, फिर भी रस भरा और पूरा है।

ऊपर 'अधे का भेद' कहानी के उदाहरण में वास्तव घटना या यथाथ पात्र में कहानी आरम्भ हुई। पर मेरे साथ अधिकांश ऐसा नहीं भी होता है। जैसे कि पहले स्वर्द्धा का जिक्र आ चुका है। वह एकदम विचार में से बना सी गई रचना है। समूची कहानी जैसे इस प्रतिपाद्य के प्रतिदान के लिए है कि आन्ध को अमुक मून ब्यपिन या प्रतिमा में डालकर और फिर उसके प्रति अपना रुमानी सम्बन्ध बनाकर चलना सफल नहीं होगा। बरब आदश की तो भीन एव तत्पर आराधना ही फनदायक हो पायगी। इस धारणा में

से ही पात्र बन सके हुए और उनके घात प्रतिघात से कुछ घटना कम भी बन गया। मेरे मत से उसमें चरित्र प्रधान नहीं बल्कि परिणाम और भाव प्रधान है।

मैं नहीं कह सकता कि इस प्रकार लिखी गई कहानियाँ को सोद्देश्य कहना गलत होगा, या कि सही। निरुद्देश्य यहाँ कुछ है यह कहना भी कम जाह्नम भरा नहीं है।

कुछ कहानियाँ हैं जो मानो कि न प्रमेय पर और न प्राप्त पर ही लिखी गई हैं। एक बार का स्मरण है कि सन्ध्यानन्तर अकेले एक मन्थन म से जाते हुए मुझे अपनी चेतना पर एक अजब तरह का दबाव अनुभव हुआ। था कहीं कुछ नहीं तो भी एक डर लगा। बाहर का न-कुछ ही उसे जाने क्या कुछ मेरे लिए हो गया था और उसकी सीधी प्रतिक्रिया मेरे अतश्चेतन पर होती थी। मैं तेज चलने लगा था और साँस फूल आई थी। छाती धक धक कर रही थी। वह कुछ एक ऐसा अनुभव था कि कुछ देर टिकता और अधिक तीव्र होता तो उसके नीचे जान ही सुन पड जा सकती थी। कोरे डर से जाने कितने मर गये हैं। यह डर, जिसे कोरा कहते हैं क्या है? यह कुछ है अवश्य। और मानो उसी का सचेतन भाव से पुन स्पष्ट पाने के लिए मैंने एक कहानी लिख दी। उसमें तो पात्र भी नहीं है घटना भी नहीं है, केवल मात्र वातावरण है। उसमें प्राणी तो प्रेत के मानिंद, जिनम देह ही नहीं और वे निरे सभ्रम के बने हैं। ऐसी कहानियों में सोते पेड बिछी घास, बहता पानी सूना विस्तार, रुकी वायु, टिका आसगा, मटमैला अँधियारा ये ही जैसे व्यक्तिगत सना धारण कर लेते हैं। ऐस म धरती आसमान से बातें करने लगती है और जो अचर है वह भी मनुष्य की वाणी बोलने लगता है।

क्या मुझे मानना होगा कि जहाँ पेड, पीछे और चिड़ियाँ आदमी की बोली म बोलते हैं यह कहानी अयथाय है? क्या वह एकत्रम अवास्तव है इस तए निरी व्यय वस्तु है? संभव है वह हो अवास्तव और अयथाय और किसी के लिए एकत्रम व्यय भी हो सकती है। पर डर भी तो अयथाय ही है। पर जो

डर के मारे मर तक गया है, उसकी मृत्यु ही क्या उसके निक्ट उस डर के अत्यन्त यथाथ होने का प्रमाण नहीं है ?

इसलिए मैं मानता हूँ कि वातावरण प्रधान कहानियाँ अनिष्ट और अनुपयोगी नहीं हैं। वल्कि चूँकि उनमें अस्थिर मास की देह नहीं है, इसलिए हो सकता है कि उनमें स्थायित्व कदाचित् अधिक ही हो। देह मर्य है, अमर आत्मा है। इससे जिसमें दैहिकता स्वल्प और भावात्मकता ही उत्कट है, उन कहानियाँ म चिरजीविता भी अधिक है ऐसा मानने को मेरा जी करता है।

तभी तो जो अतम्भव की रेखा का छूती है और जो स्थूल भौतिक जगत् की सभ्यता की सीमाओं में पराजित नहीं है, वह क्या जाने काल के कितने स्थूल पटना को भेदती हुई गताब्धियाँ से अबतक जीवित बनी हुई है। पुराणा की देवता और राक्षसवाली कहानियाँ, जानक की कथाएँ और ईसप की पशु पक्षियाँ की वार्ताएँ फँस कर हमारे नित्य प्रति के जीवन में घुल मिल गयी हैं। अत यथायथा का आवधन और अवलेप जिस पर जितना कम है वह कहानी समय की छतनी में छतनी हुई उतनी ही थोड़ा भी ठहरे, तो मुझे अचरज न होगा।

● ● ●

अपनी कैफियत

काफी अरसे पहले यह अपनी कैफियत दी गई थी। आज दस बरस स ऊपर हो गया। उसमें कुछ अधिक जोड़ने की दस समय रुचि नहीं है। अपना ही विद्वेषण आप मुझमें न चाहें। बाहर की घटनाओं या व्यक्तियों का प्रभाव मुझ पर क्या पडा यह मैं छाँट पीनकर बता नहीं सकता हूँ। जो हूँ, उन सब प्रभावाँ के परिणाम में ही हूँ। अलग अलग करके उन्हें दे सकूँ, तो धायर मैं स्वयं कुछ भी न रह जाऊँ।

नीलमदेन की राजकन्या कहानी का मैं अपनी सबप्रिय सबश्रेष्ठ कृति समझता हूँ, ऐसा न मान लीजिये। न प्रियता जडचीज है न श्रेष्ठता। दोनों गुण सापेक्ष भाव से जहाँ तहाँ 'यूनाधिक' परिमाण में बटे रहते हैं। इस दृष्टि से अपनी रचनाओं में चुनाव करना मेरे लिए कभी संभव नहीं हुआ। चुनौती के

जवाब में भी वह मैं कर नहीं पाया। इस नीलम देश की कहानी की चर्चा शायद कम ही हुई है। वह किसी बाहरी स्थिति या बोध या मत के लिए नहीं बनी है। वास्तव उसमें कुछ है ही नहीं। दंग है तो नीलम का, क्या है तो उसके माता पिता का आभास नहीं है सहस्राब्दों से ऊपर उसे आयु मिली है। इस तरह कुछ भी वास्तविकता वहाँ नहीं है। उस क्या का सारा कलेवर मरे अपने अतरंग के भाव सूत्रों से बुना जोर बना है। इसलिए किसी एक कहानी का नाम जब मुझे आपको बता देना ही पड़ा तो मैं सहज भाव से वह नाम ले दिया। मैं श्रद्धा का कायल हूँ। बुद्धि-व्यापार सत्य की उपलब्धि में अंत में तगड़ा ही ठहरता है। बुद्धि की इस सीमित साधकता और उसके आगे उसकी व्यथता का जतलाने के लिए कहानी लिखी गई व्यर्थ प्रयत्न। उसी की जोड़ में लगभग साथ ही यह कहानी बनी, नीलमदेश। जैसे वह उत्तरपथ है पहली में नकार है तो इसमें स्वीकार। मैं इस रचना को अपनी मूलभूत दृष्टि की परिचायिका कह सकता हूँ।

निवेदन और जिज्ञासा

मई महीने के बाद 'चाद' का एक लेख मेरी कहानी 'ग्रामाफोन के रिफाई का याद किया गया है। लख पर लेखक का असली नाम नहीं है। मैं इच्छा मान लेता हूँ कि लेखक स्त्री नहीं है। यद्यपि उपयुक्त (और सम्भव) है कि वह स्त्री हो। उनका पता मुझे हो तो सीधे उन्हें लिखकर मैं उनसे मांग दगन चाहूँ। जहाँ वह लेखक निश्चित और निश्चक है वहाँ मैं स्वीकार कर लूँ कि मैं नहीं हूँ। मैं अभी राह बूझ ही रहा हूँ। प्रार्थना हूँ कि राह पा जाऊँ। इसमें यहाँ मैं अपनी स्थिति लेखक और पाठक के सामन रखने की राजत चाहता हूँ।

कहानी तो कहानी है। इसके बारे में कुछ कहना क्या है। उसकी सफाई मुझसे न चाही जाय। सफाई देने लगने से या भी चलतपहमी दूर होते कम देखी जाती है। मैं मानता हूँ कि उन पाठक लेखक को गलतपहमी हुई है। 'गाय' उहाने मेरी और कम चीजें पढ़ी हैं। तो भी वह इसी कहानी को दुबारा पढ सकते हैं। तिवारा पढ सकते हैं। मैंने उस फिर फिर पढा है। मैंने यह नहीं पाया उसके भीतर कि बुराई को पोषण मिला है। वहा भी मुझे मानव हृदय के अनानिक अनुमान की अपनी लगन मिली है। उससे पहले भी मुझे बताया गया था कि मेरी उपयुक्त कहानी मे से कि-ही की बुराई पृथ्वी दीख पडनी है। पढकर मैंने अपनेसे पूछा था कि क्या उस कहानी की 'विजया' को मैं अपनी सभी वहीन मानने के लिए तैयार हूँ? उस प्रश्न का जवाब मेरा मन बीपा नहीं था। मैंने उत्तर पाया था कि हाँ क्या नहीं, तैयार हूँ। उस लेख के बाद भी मैंने वह कहानी फिर पढ़ी और फिर अपने से वही पूछा। मन ने कहा

कि शेषक विजया तेरी बहिन ही तो है। इस सवाल पर मेरा मन काँप जाता तो मैं प्रार्थना करता कि परमात्मा गति दे कि मैं हिन्दी सप्ताह से अपनी उस वाली कहानी को वापस खींच लू। पर अब जब बात बसी नहीं है मैं लखन और पाठक से पूछना हूँ कि कृपया बतावें मैं क्या करूँ? क्या पाठक के समक्ष कहानी के प्रति अपनी स्वीकृति और अपना पूरा दायित्व ही नहीं स्वीकार कर लूँ?

समस्याएँ इसी स्थल पर खड़ी होनी हैं। क्या सभी कुछ लिखा जा सकता है? क्या निषिद्ध कुछ है ही नहीं? जो भरमाये फुमलाय जो बहवाये और त्मारी पशुता को जगाये क्या वह भी गिना ही जाय?

एक ही वस्तु में म किसी को विराग प्राप्त होता है। दूसरे में उमी क सहारे उत्कट वासना फनफना उठती है। तो उम वस्तु क बार में क्या गिना किया जाय?

निषेध की रेखा यति है और आवश्यक है तो उसे कहीं खोजा और कहीं खींचा जाय? अनिष्ट और इष्ट साहित्य में क्या अंतर है? क्या कृद्य अंतर है ही नहीं?

ये और ऐसे और सवाल खड़े होने हैं। व अपना हल माँगते हैं। मैं चाहता हूँ कि सभी उक्त तोग इन धाना का समाधान करके दें। मुझे शेषक पढ़कर ऐसा नहीं मालूम हुआ कि उसने लखन ने इन प्रश्नों की गुहना पर पूरा ध्यान दिया है। या फिर यह तो सचना है कि उनकी बात पूरी तरह में ही नहीं समझ पाया हूँ।

लेखक का काम जोखिम में भरा है। जो उसके अपने विश्वास ह, मानो उसके बारे में भी उस निमम जाना पड़ता है। उममें सनन जिनासा है, निरंतर प्रश्न है। अपनी मायना अपना अभिमत अपनी धारणा अपना अङ्कार, इन सबमें उस दिनारा खना होता है। उनक प्रति भी वह निरंतर सप्रश्न है। प्रश्न बिना जिनासु क्या? सत्य्य हुए जिना द्रव्या क्या? लखन के लिए ममना का कहीं अयकाग नहीं रहता। सब उमक हैं फिर भी कौन उसका है?

वह थड़ासान है फिर भी (अथवा तभी) शकाशील है। स्नेही है इसी से निस्स्व है। इस भाति परमात्मा भी उसके निवृत्त आलोक्य धनता है। वह जितना ही निस्सग हो निमग्न हो उतना ही कम है। यह निमग्नता असलग्नता, उसी अनुपात में व्यक्ति को प्राप्त होता है कि जितना गम्भीर और कठिन उसका जत स्थ प्रेम होता है। लेखक द्वय इसीलिए किसी से नहीं कर सकता, क्योंकि राग नहीं कर सकता। द्वेष भी राग है। दोनों मोह जय ह। इसी से लेखक के निवृत्त जज देवता भी अनोचनीय होता है तब वश्या भी विवचनीय बनती है।

क्या यह ठीक नहीं है कि लेखक जज नहीं है? हमारे सब विवेचन जो जनक्य की स्पर्धा में से बने हैं, जो पिनल को बजसे मालूम होत हैं वे लेखक के लिए नहीं हैं। समझो कि वे उनकी पहुँच से बाहर है। पापी, नारकीय घृथ्य अस्पृश्य नीच शत्रु, पामर—ये सब लेखक के काम के लिहाज से मोघर, ओछे निरे स्थूल पडते हैं। इनमें से किसी दुर्विवेचन से पुकारा जाने वाला व्यक्ति लेखक के लिए वजनीय कैसे हो सकता है? इस दुनिया से बाहर का सत्य उसके लिए अप्रतिष्ठित है। उसे दुनिया का दीना में पतितो इलितो और पीडिता में पापिष्ठ और पापिष्ठाशा में भी उसी आत्मा को देखना है जो सत्य है जो कि एकमात्र सत्य है। जिसको समाज का पायाधीश जेल और फाँसी की मज्जा दगा, लेखक को उसे भी छाती से लगाने को तयार रहना होगा। लेखक जज नहीं हो सकता। जज बड़ा आत्मी हो लेखक को अपने से तुच्छातिनुच्छ से भी बड़ा नहीं गिनना होगा। लेखक गूथ है इसी सबक प्रति वह सम्माननीय होगा। 'विजया यदि पतिता है ता हो, लेखक उसे अपनी बहिन क्या न मान मके? लेखक को उसके पतन में सुख नहीं है। वह उसके दुख में दुखी है। उस पतिता को लाछना देकर, उपहास देकर लेखक का चन नहीं है। उसकी दयनीयता में से लेखक को रस नहीं लेना है। क्या वह उसे उतारने के लिए अपने को विसर्जन करने की क्षमता भी नहीं चाहता? चाहता है थोर ठीक इमोलिण वह उस 'पतन की आरंभ नहीं मीच सकता। क्योंकि क्या असम्भव है कि उसके निमित्त उसे खपना भी पड़े?

जब मैं ऊपर की बात कहता हूँ तब मुझे लगता है कि जगत् के कम कलाप के बीच कही गहरी कोई ऐसी रेखा खींची हुई नहीं है जिसके उस पार पुण्य हो और इस पार पाप हो। पुण्य प्रेम है और पाप अप्रेम के अतिरिक्त और क्या है? अपने जी से बाहर पुण्य और पाप का अस्तित्व मुझे नहीं दिख पाया। इसलिए मैं जानता हूँ कि आलेख्य और विवेच्य वस्तु क सवध में विधेयता और निषिद्धता की समझना होगा तो अधिकार भेद और अधिकारी भेद की अपेक्षा के बिना मात्र वस्तु जगत में उस नहीं समझा जा सकता।

क्या कल में पाप नहीं है? क्या निर्दोषता निश्चेतनता और जड़ता पाप नहीं है? हम निर्दोषता की पवित्रता की परिभाषा आढा दें तो इसमें क्या वह कम पाप हो जाती है? जिस तरह कायर और भीरु की अहिंसा अधम है, वैसे ही निस्तेज रोगी का सन्नाचार स्पृष्टनीय नहीं है। रोगी का रोग समझना होगा और उसके सन्नाचार के मूल को खडित हो जान देना होगा।

सब में भारतीय नारी की बात कही गई है। वह ठीक है। ललित नारीत्व भारत में समाप्त नहीं है। नारी यदि आन्तरिक है तो इस बात के ही साथ गहरी कि वह भारतीय हो। यदि नारी भारतीय राष्ट्र है तो इस कारण वह कम सम्माननीय और अधिक आलोच्य नहीं बन जाती। जान पड़ता है कि भारतीय गहरे नारी ललक के निकट स्थित कम आन्तरिक की पात्र रह जाती है। मैं इस दम्भ के विरुद्ध हूँ भले वह राष्ट्रीय हो। भारतीय संस्कृति के समर्थक हान का यह अर्थ मैं अपने लिए नहीं लगाना कि इतर संस्कृति व्यवस्था भिन्न जीवन के लिए मरे मन में आन्तरिक रूप न रहे। भारतीय नारी यदि चिर तन नारी की प्रतिनिधि है तो यूरोपीय रमणी भी क्या नहीं है? मैं नारी की भारतीयता को अपनी सहानुभूति और दृष्टि की परिधि नहीं बना लेना चाहता। मैं मानता हूँ कि सजीव भारतीय तस्वीरी भारतीय गहरी प्रतीक्षा विरासतिल है। अतिव्यक्तनीयता अचंचल पत्थर का लक्षण है।

जिम्हें जल्द है वह है यहाँ प्राणता। माहित्य में उमकी जल्द है और जीवन में उसकी जल्द है। छाटी-छोटी ममता का सँकेचा उठना होगा।

तग दापर नही काम दोगे । घम, सिद्धांत मत मामता, प्रकृति-सस्कृति, पथ सम्प्रदाय ऐस गन्ना की आट लकर सकीर्ण ममताएँ और सीमित स्वाय आज पाल और पोसे जा रहे हैं । उनसे चिपटकर मानव और मानव समुदाय अपने को निबल रख रहे हैं । अपनी ही निबलता उन्हें प्यारी है व मोह मे मुग्ध ह । लेकिन नही जग विकसित होगा और मानव देवता होगा । हम धुद्र कैसे रह सकेंगे ? विगट का आह्वान क्या प्रतिष्ण हमको नहीं प्राप्त हो रहा है ? तज धुद्र बने रहने का अवकाश हम धुद्रो का भी नहीं मिलगा । हम चीखते रह सकते है कि हमारा घम गया हमारी सस्कृति डूबी हमारा आदस मिटा । लेकिन जो कल्याणकर है वह सम्पन्न ही होगा । हमारा रोना वह सुने तो हमारा ही मगल साधन कैसे हो ?

मैं मानता हूँ कि सत्य गहन है । मैं जानता हूँ कि सत्य जितना व्यापक है उमक नाम पर उतना ही पाखड व फूलने की गुजायग है । जो वर्षाहरियाली उपजाती है वह गदगी भी बढाती है, लजिन बसकलिए वर्षा को रोकने का यत्न नही करना हागा । हमका अपने भीतर परस जगानो होगी । पीतल भी पीला होता है इससे सगक होकर स्वण का बहिष्कार करना बुद्धिमत्ता नहीं है । समवण और सस्ते होने की विशेषता से लाभ उठाकर पीतल बाजार का पाट द सकता है तो भी सोना इस पीतल के सौभाग्य की स्पर्धा नहीं कर सकता । वह अपने को दुर्भागो मानकर अपनी स्वगता तज दन का अहकार किस भाँति ठाने ? वह विनीत हो, पर अपनी स्वणता पर लज्जित उम नहीं होता होगा । हाँ उसे चाहो तो तिरस्कृत किया जा सकता है ।

मुझे आगा है कि समाक्षक लाग ऊपर उठाये गये प्रश्नो को हमारे निकट मुनभान की कृपा करणे ।

मेरी रचना-प्रक्रिया

✽ कहानी या उपन्यास लिखने की प्रेरणा आपको अधिकांशतः जीवन और जगत् से सीधे मिलती है या उनका प्रति बन चुक अपने किसी दृष्टिकोण से ?

—बन चुक दृष्टिकोण को फिर फिरकर सवारते रहना होता है। अर्थात् दृष्टिकोण कितना भी स्थिर हो नये आते हुए अनुभवा से सस्वार प्राप्त करता ही है।

जीवन और जगत् से आने वाला प्रभाव सबेसो का मिलता है। वहाँ से स्वयं जिस दृष्टिकोण कहा उमम रच रम जाता है।

कहानी उपन्यास मेरे लिए केवल भावोद्गार नहीं है। उसमें लिखा होती है और वह विचार से आती है। विचार मनोदृष्टि या दृष्टिकोण से स्वतन्त्र नहीं हुआ करता। मैं जानता हूँ कि यदि उसके पीछे दृष्टि या विचार न हो तो रचना में बहुत कुछ भावात्मकता हावर भी अर्थ की उतनी गरिमा नहीं हो सकती। प्रभाव को इसे अविधि कहते हैं या एकाग्रता और एकग्रता कह सकते हैं। वह उस विचार में से आती है जो पहले से ही उपस्थित रहता है और स्वयं घटना और रचना में से अपना समयन-प्रकाशन चाहता है। घटना में जीवन और जगत् की आर से आने वाले प्रभावोपलक्ष को कहना हूँ।

✽ जिसे आपने मनोदृष्टि कहा है साहित्यिक कृति के माध्यम से आप प्रायः उसकी पुष्टि करने की चेष्टा करते हैं या उसकी जाँच की ओर भी अक्सर होते हैं ?

—प्रायः पुष्टि करता हूँ। जाँच करने का साधन अधिकांश इन्द्रिया से प्राप्त होने वाला सीधा जगत्-सोप होना ही नहीं है। जाँच का साधन यदि हो

तो स्वयं अतरंगता के पास है, बाह्य विवरण और विंगत के पास नहीं है।

यह सच है कि मैं श्रद्धा से चलता हूँ। श्रद्धा के पास मानो कुछ प्रहीत भावता रहती ही है। बाह्य सामग्री इन्द्रियो क द्वारा जितनी भी बुद्धि के पास पहुँचती है उस सबम मानो बुद्धि चुनाव और उदाव करती है। यह सब बुद्धि का घषा श्रद्धा से स्वतन्त्र नहीं हुआ करता। बल्कि श्रद्धा क अनुसार ही होता है। लेकिन श्रद्धा मत कट्टरता से सबघा भिन्न वस्तु है। मत की जडता प्रश्न का स्वागत नहीं करनी। श्रद्धा क लिए प्रश्न भोजन है। इस तरह बुद्धि श्रद्धा को काटती नहीं न उमे सस्कार परिष्कार देती हुई कही जा सकती है। वह तो श्रद्धानुमारिणी ही होती है। कि तु सजीव श्रद्धा मानो नित्यप्रति अपने को आत्म सस्कार दिया करती है। और इसम व्यक्तित्व का वह अश सहकारी होता है; जो तब बुद्धि स गहरे यथा क स्तर पर काम किया करता है। श्रद्धा आत्मयथा म से स्नान कर नित नूतनना प्राप्त करती है।

बाहरी घटनाएँ इस श्रद्धावित व्यक्तित्व स्तर मे मे स्वयं जन पाती और अपना रस देकर उस और पुष्क कर जाती हैं। इससे अधिक गायद क नहीं कर सकती।

‡ जिस श्रद्धा को लेकर आप साहित्य सजन म प्रवृत्त होते हैं जब उसम मत की कट्टरता या मताग्रह का लेग भी नहीं है तो आपके जाने या अजाने मनोदृष्टि की जाच की गुजायश तो रह ही जाती है। अपनी किसी कृति को लिखते समय या पूरा करक क्या आपने कभी ऐसा भी महसूस किया कि जिम मनोदृष्टि को लेकर वह चली थी उसम हेर फेर की अपेक्षा है ?

—हाँ कोई रचना ऐसी नहीं है कि जो मेरे हाथ आकर बदली न जाय। बार बार आये तो बार बार बदलने की इच्छा होती है। इसीलिए मैं कोणिग करता हू कि होने पर रचना फिर मेरे सामने आयेगी ही नहीं।

यह फेर फार करने की इच्छा क्या होती है ? आगिर कसीलिए हा सकती है कि व्यक्तित्व और जीवन एव क्षण के लिए भी गतिहीन नहीं रहता है।

हैं सजन में आलोचन गर्भित हुआ चलता है। इसलिए सृजन कोई सहज प्रक्रिया नहीं है। बड़ा कष्टनायक अनुष्ठा है। कष्ट मुश्किलता से इसी दतिनार आलोचना से होता है जो आर की तरह से तुमको बराबर काटती रहती है। जो बान ध्यात दन की है और जिसे मैं बट महत्व की मानता हूँ वह यह कि आलोचना वह अतमन और अत विवक से आती है। बाहर से आई हुई बुद्ध भी प्रतीति उसके लिए सहायक नहीं हो पाती। उपनेग आदेश थयवा पान विमान की आभा अनुभा सहायक नहीं होती बल्कि ऊपर से आई सीख एकत्र असंगत जा पटती है। और उपनेग की अधिकाश अवना हाती है। वह इसी कारण कि चतय का परिष्कार वस्तु की आर से नहीं आ सकता उसे आत्म की ओर से ही आना होता है।

आत्माभि-यक्ति में आत्मातोचन गर्भित रूप में और अनिवाय, होता ही है। इसलिए वह श्रद्धा जिसमें मत की बटटरता का विशिष्ट रह गया है, साहित्यिक सृजन में से माना स्वयं अपनी जडता का परिहार प्राप्त करती है। साहित्यिक कृति का प्रभाव और उतना ही होगा जितना सहानुभूति का प्रवाह खुला रह सता है और बटटरता अवरोध नहीं बन सकती है। अवरोध यदि वही बनी हो तो साहित्यकार और साहित्य रमिन् तबाल अनुभव करेगा और इस प्रकार स्वयं उग साहित्य की कृति से बटटरता से मुक्ति का उपाय हो चलागा।

❖ अभी-अभी आपने बड़े मार्कों की बान कही है— श्रद्धा आत्म-व्यथा में से स्नात कर नित नूननता प्राप्त करती है। परंतु मुनीता सुपना विवक और व्यनीन की नायिकाओं का समांतर विवास और उग वाम समाप्त होते होते उनका एक ही रूप का उमरकर सामने आना क्या इस बात का द्योतक नहीं है कि इन उपायों का अत एक ही निष्कप में हुआ है ?

❖ दा व्यक्ति मृष्टि में कभी पूर एक समान नहीं होते। न रचना में दो पात्र बिलकुल एक ही मकत हैं। गमान-अस दाखते हा पर होते गही हैं। जिना उपायों का आपने नाम दिया, उनकी नायिकाओं में आप चाह तो अन्तर

देख सकेंगे। मेरे उपन्यासों में अंतिम परिणति यदि कुछ एको-मुखी दीखती हो तो हा, वह हो सकती है। मेरे लिए अंत में सब बातें एक बड़े प्रश्न और बड़े धम में समाई हैं। वह यह है कि अंत में वह को अद्विल में अर्पित और लीन हो रहना है। समस्या मूल में यही है कि व्यक्ति है। व्यक्ति की समस्या जसी मालूम होती है लेकिन वह मृष्टि की समस्या है इसलिए जो निदान समस्या को बाहर देखता है, देश और काल में रखता है वह रोग के लक्षणों को पकड़ता है, मूल तक नहीं जा पाता। राजनीति और दूसरी कार्मिक प्रवृत्ति उसी तरह चलती है। मुझे वहाँ समाधान नहीं जान पड़ता। इसलिए गायद मरी सब कहानियाँ अंत में जैसे कुछ एक ही रहस्य में आकर समाप्त होती हैं। उसके अतिरिक्त गायद उन रचनाओं में समाप्ता न भी देखी जा सके, पर वह विचारणीय नहीं है।

अब तक आप अपना अधिकांश जीवन दशन या आपके ही शब्दों में मनोदृष्टि साहित्य के माध्यम से अभिव्यक्त करते जाय हैं। क्या कभी आपको ऐसा भी लगा कि यदि यह साहित्य की ओट छोड़ मैं अपने वास्तविक रूप में सीधा पाठकों के सामने जाया जाता तो बेहतर होता ?

—नहीं अपनी ओर से तो नहीं लगा। लेकिन कहानी उपन्यास पढ़े जाते और पढाये भी जाते हैं, तब प्रश्न होता है और मुझसे किया जाता है कि वाक्य का अर्थ क्या है या उस प्रसंग का भाव क्या है ? तब मालूम होता है कि जीवन का प्रश्न जानकारी का बन गया है और जा फनन और सहने के लिए या वह समझने में समझाने का बना जा रहा है।

मैं मानता हूँ कि जीने के सवाल को जानने का बनाना जीने में बचना है। गायद जो बठिन है उस हठात आमाम माग लना है। फिर भी यह करना पड़ता है। लेकिन इस काम का मूल्य दायम है। प्रथम जीत जागत चरित्र-प्रतीका की सृष्टि है। तत्त्व विज्ञान का उत्पादन उतना बड़ा काम नहीं है।

फिर भी मुझ कथा-लेखक को छोड़कर मुझ विचारक को अपनाते वाले लोग भी मिल जाते हैं। ऐसे लोग प्रतिष्ठा प्राप्त और गम्भीर होने हैं। अनेक

हैं जिन्होंने कहानी मरी एर भी नहा पत्नी है न पढ़ेंगे । निबन्ध पत्रों के और उसी को पढ़न योग्य मानते हैं । बहुत है जो ताजा हालत में फन पसंद नहीं करते सूखी हालत में सिर्फ मवाक कायल होत ह । मानना हागा कि फल जल्दी रस छाड़ रहता है । सूखी मवाक प्रनाये रखा जा सकता है । जिममे स जान चली गयी है उस आगे फिर मरना शेष कहाँ रह जाता है ? एमे नान अधिक जी जाता है । क्योंकि बेजान होने से उसके जीवन का आरम्भ होता है ।

मैं उस काम में पडा हूँ क्योंकि युग बुद्धिवादी है और मैं उस युग राग से बचा हुआ नहीं हूँ । अपेक्षाकृत यह काम आसान भी होता है । कहानी में अपने में ज्यादा लड़ना झगड़ना पड़ता है और वह चीख हटकी दीखने पर भी मुश्किल हानी है । मम का रस मुझे उसी में मिलता है । और सबसे बड़ा मुविधा यह है कि कहानी की व्याख्या आवश्यक नहीं हुआ करती है । फिर भी पत्रों लिखन वाले लोग व्याख्या पर चलते और चर्चान हैं । हममें उनकी भी कुछ उपयोगिता है ।

हम बीच आपक विभिन्न समस्याओं पर बहुत सार चिंतनात्मक लेख पढ़ने को मिले हैं । तो आप जब विचार करते हैं तो किसी न किसी एक निष्कर्ष बिन्दु पर तो साधारणतः पहुँचा ही करते जागे । ता मूलरूप में आप प्रमुखता से क्या कहना चाहते हैं ?

—एक मुश्किल मरी शुरू से रहा है और अभी तक भी बची नहीं है । वह यह कि मुझे अपने को मानना पड़ता है । मैं बिना काम ही नहीं चलता है यानी पत्रों में मान लूँ कि मैं हूँ । लेकिन मैं अपने का पूरी तौर पर मान भी नहीं सकता हूँ । क्योंकि इतना अनंत यह जा कुछ बाहर है वह भी है । ता मरा बाकी इस सार श्रद्धा से समान से जगत् में देग स, टनिया ग, मूरज से चीज स गप से क्या मवय है यह बड़ा प्रश्न बन आता है । सबष न रह जाए मैं अपने में ही मुड़ गाड़ लूँ ता उसमें समाधान मुझे दीखना नहीं है । और सय पद्धति का अन्वेषण यही बनाता जान पड़ता है । मैं अपने का इन्तार कर दूँ,

और शेष काल इतिहास में नकार वत ठहरा दू तो भी ऐसा मालूम हाता है कि 'मैं' नाम की चीज समाप्त नहीं होती है। यह जो यमवाद है भौतिकवाद जिसको शब्द दिया जाता है उसके जोर से भी मैं खत्म नहीं हो पाता है। बल्कि बढ़ जाता, पून आता देखा गया है। तो आखिर में मुझे लगता है कि मैं और बाकी जो कुछ है उसक बीच में सतत आदान प्रदान का सबध ही सच है। मैं बाहर से जा कुछ मेरी इन्द्रिया लाकर मुझे देती हैं उसका स्वीकार करूँ, यह कह कर तिरस्कार न करूँ कि यह मिथ्या माया है। फिर इस ओर से भी अपनी चेतना-भावना अपन में न रखूँ दूसरे को दू। इस प्रकार अगर पूरा वृत्त हो जाय वहाँ से लू और अपन को दू तो मैं समझता हूँ कि जीवन में चित विद्युत् रेखा प्रवाहित हो जाती है। नहीं तो विद्युत् प्रवाह चलता नहीं है। तो अब इस सबध को मैं प्रेम का सबध कहता हूँ जहा अभि नता पाने की कोशिश है जीर भि नता को अनुभूति है। तथ्यानुभूति भि नता की है, श्रद्धा धारणा अभि नता की है। देह में विद्योद्, आत्मा में सयाग। विग्रह रेखा और सयोगानन्द। तो यही एक मेरी मुख्य चीज है कि ये दो जो हैं, धम और कम, अध्यात्म और वस्तु में और समष्टि व्यक्ति और समाज, इत्यादि इत्यादि दो किनारे बना रहते हैं, इन दो में एकता हो। दो में नाश किसी एक का भी न हो, पर दोनों के बीच में प्रीति हो। इसका मैं आदर्श मानता हूँ, इसको साध्य मानता हूँ। इसी की उन्नत में मेरा जा कुछ लिखना होता है होता रहा है।

✽ प्रेम क सामाजिक स्वरूप पर जाय विरोध जा रहते हैं ?

—मैं समझता हूँ कि अप्रेम असामाजिक है प्रेम सदा ही सामाजिक है।

✽ कही व्यक्ति प्रधान हो जाय और कही उसमें उसका जो दूसरा सामाजिक स्वरूप ।

—जी मैं समझता हूँ कि व्यक्ति प्रधान होता है। प्रेम तब अप्रेम क मिश्रण क कारण हाता है। प्रेम अपन जाय क अभय प्रधान है। उसमें 'स्व' और पर दोनों की समा रक्षा है और मैं समझता हूँ कि क्याकि यह अभि नता का प्रयास है इमोलिंग प्रेम कभी भी असामाजिक हो सकता नहीं है। और जो असामाजिक होता है वह अप्रेम क मूल क कारण होता है। इसलिए प्रेम में

लिए, मरी कहानियों में और तरह में भी, अतिम मूल्य है। उस मूल्य की परख के लिए कोई दूसरा मूल्य नहीं रहता। वही है जो कि स्वप्रतिष्ठ और प्राथमिक है और इस मूल्य की कसौटी पर दूसरी चीजें बसी जा सकती हैं। प्रेम का कसने के लिए उपयोगिता कसौटी नहीं है। प्रेम तो सवथा शुद्ध है पवित्र है। यह मरा मत है।

‡ आपका इस विचार के साथ ही एक और दूसरा प्रश्न मेरे मन में उठ आया है कि क्या साहित्य के सजन के समय आपके विचार क्या स आगे आगे चलते हैं या क्या विचारों स आगे रहती है ?

—इस प्रश्न को मैं कुछ अपनी भाषा में कहूँ तो मुझे लगता है कि मेरा निमाग कागज पर तो शब्द लिखे जाते हैं—उससे आगे नहीं चलता। दाना साथ साथ चलते हैं। याने निमाग में लिखे जाने के साथ साथ ही कागजवाला लेख भी लिखा जाता है। अगर निमाग में कहानी कागज से स्वतंत्र होकर बन जाती है तो लिखने में कभी नहीं आती। आप इसमें से क्या निकालियेगा ? मैं समझना हूँ गायत्री सार यह निराले कि दोनों प्रक्रिया साथ साथ चलती हैं। ऐसा मेरे साथ हुआ है। यानी कि क्या का आत्म निर्माण अर्थात् आंतरिक भावबोध और क्या का कतेवर बाह्य य दाना युगपत् साथ चलते हैं। इसमें आगे पीछे होने में उतारभन हो जाती है।

‡ ये बात तो मैं स्वीकार करता हूँ। लेकिन इस बात, इस प्रश्न की प्रेरणा इसलिए भी मिली थी कि आपका व्यक्तित्व जब भी सामने आता है एक चिन्तन या विचारक व्यक्ति जसा सामने आता है। आप विचारक क्याकार हैं। इस लिए आपका विचारक प्रमुख हो जाता है या क्याकार प्रमुख हो जाता है ? प्रश्न के मूल में यह जिज्ञासा आपके समक्ष रखना चाहता था।

—आप सच मानिये कि एक चीज जिसमें मैं बहुत ज्यादा पहराना हूँ डरता हूँ वह विचारकता है। मैं किसी विचार को कभी भी अपने पास फँकने नहीं देना चाहता। कागज रहती है कि मैं सारे विचार के प्रति अपने निमाग को बन्द रखूँ। क्योंकि मुझमें यह लगता है कि जब तक दुःख भीतर नहीं है, उतारभन

सामन नहीं है तब तू जा भी विचार है सा खामखाली है, बुझार है, वह विचार नहीं है। इसलिए मैं विचारक कुछ भी नहीं हूँ, भाई! और मैं समझता हूँ कि विचारक और कथाकार इस दोनों के बीच झगडा अनिवाय हो तो वसा झगडा हाता हुआ मैंने तो जपन अन्तर अनुभव किया नहीं है। बाहर सुनता हूँ कि कोई दाशनिक हुआ करता है जो कलाकार नहीं होता है इत्यादि इत्यादि। वह सब तो व राग जानें, जो कहते ह। इस तरह का झगडा मैं अनुभव नहीं किया है। कब कथाकार ऊपर आ जाता है, या कि दाशनिक ऊपर आ जाता है। मैं समझता हूँ पडिता के बीच में बात करनी होगी तो कलाकार को मौका ही नहीं है तब ऊपर नीचे क्या, दाशनिक ही दाशनिक सामने आयगा। और जन मागा य के बीच में बात करनी होगी, जहाँ पर कि दाशनिक गुत्थी नहीं है वचारिक गुत्थी नहीं है ता वहा क्या का रूप आ जायगा उदाहरण का रूप।

✽ और एक विनम्र पाठक के रूप में आपके उपयोग पढते हुए कई बार मुझे कुछ पाना के प्रति क्रोध हो आता रहा है खासकर इसलिए कि वे झटके के साथ सब कुछ को तोड़कर अपना मनचाहा क्या नहीं कर लेते है। मैं आपसे बड़ी विनम्रता के साथ यही पूछना चाहता था कि ऐसा ही कुछ कभी कभी आपन स्वयं भी अनुभव नहीं किया है ?

—मुझे इससे बहुत खुशी है कि मेरे पात्रा के प्रति किसी में क्रोध पैदा होता है। खुशी इसलिए है कि उसमें प्रगट हो जाता है कि वह पात्र जीता जागता है। उसके सामने प्रत्यक्ष हो जाता हो तभी तो क्रोध हो सकता है। तो ये भावनात्मक सबध रागात्मक सबध यदि पात्रों व प्रति पदा हो जायें तो तो मैं समझना हूँ कि कहानी की सापेक्षता इसी में है। अब वह गलत पान है या सही पात्र है यह प्र न रोष नहीं रहता। विवगता को तोड़ फोड क्या नहीं डालता है पात्र, मिसमिसाकर क्या रह जाता है ? यह परिस्थितिया का जो एक उसका ऊपर आवेष्टन है उसको तोड़कर क्या नहीं तीर की तरह से निकल जाना है उनका हुआ क्यों रह जाता है ? यह प्रश्न है और सगत है।

तो मैं यह मानता हूँ कि परिस्थितियों को तोड़ने में जो एक मुक्ति समझी जाती है, कि जिम्मा विद्रोह विप्लव कहते हैं क्रांति इत्यादि कहते हैं वह मुक्ति है ही नहीं। उसको मैं मुक्ति नहीं मानता हूँ। जहाँ यह विद्रोह अधिक है मैं समझता हूँ वहाँ फटफटाहट तो है लेकिन उसका फल मुक्ति नहीं है। इसलिए परिस्थिति और यत्न इन दोनों में सबसे वह बना डानना जहाँ पर कि हम समझें कि तोड़ना ही एक मिट्टि है वहाँ भ्रम है। तो अंत में यह प्रगल्भ होगा कि परिस्थिति वह चीज है जिम्मा साथ सधि की जा सके तो—आदमी का विकास आरम्भ होता है। इसलिए मेरा पात्र परिस्थिति को धक्का देकर तोड़ने में उतना उछल नहीं मालूम होता। परिस्थिति में मिस मिसाल दीखता है लड़ता भगवाना है तो ऐसा मालूम होता है कि अपने साथ ज्यादा लड़ता-भगडता है और अपनी रुचि अरुचि अपनी अंतर्दृष्टियाँ के साथ बाहर के साथ कम लड़ता है। यह मेरे पात्र में इसलिए लिखाई देता है कि मैं यह मानता हूँ कि चेतना परिस्थितियों का उपयोग करके अपने का विकसित कर सकती है। परिस्थिति को टक्कर देकर उसमें कोई छेद या दरार पत्ता करके चेतना विकास पानी है, ऐसा मैं नहीं मानता।

❖ लेकिन वह परिवर्तन तो क्या सकता है उस परिस्थिति का ?

— हाँ ही है। प्रत्येक ऊँचधामी चेतना परिस्थिति का परिवर्तन किए बिना रू नहीं सकती बस कि परिस्थिति के प्रति भुभुगाहट ही हो उस चेतना में। स्वीकारता चाहिए परिस्थिति के प्रति। मेरे ख्याल में यह जो मेरे पात्रों की नासर्ग है, और चिंतनशीलता है उलझन में रह जाता है, और चीर पराश्रमी पुरव की भाँति तोड़के हुए आगे निकल जाना अगर नहीं है तो वह इतनी घरी मायता के कारण ही है कि पराश्रम के नाम पर जो मोह हम आकरना है वह सचमुच पराश्रम नहीं है वह प्रतिक्रिया है।

❖ एक अगला प्रश्न आपस पूछें कि आपकी अधिकांश पात्रों पत्नी के साथ ही प्रेमिका भी हैं या उनका प्रेमिका रूप का एक यतीत उनका साथ जुड़ा हुआ है। कृपया बताइये कि आपने लड़कियों की महाभूमि नारी के विरा रूप के साथ है ?

✽ अब यह जो आपका शब्द है व्यतीत दससे दुविधा भूलकती है। आप निरसकोच रह। क्याकि सत्य का हम सामना करना है। अतीत का ही प्रश्न नहीं है वतमान और भविष्य में भी प्रेम को रहना ही है। विवाह जितनी ही आयु उसकी नहीं होती। मुझे लगता है आप माफ करें कि विवाह हो जाने के कारण और स्त्रियाँ में सौन्दर्य का दख सकू तो मैं समझता हूँ यह बय करता विवाह का अपमान है।

✽ सौन्दर्य का मतलब लेकिन हम प्रेम से कैसे ले लेंगे ?

—सौन्दर्य की अनुभूति जहाँ है वहाँ प्रेम नहीं है यह सिद्ध किया जा सकता है। रूपज है प्रेम।

✽ लेकिन वह प्रेम जो हर सामनवाली आनवाली नारी—

—हो सब नारियाँ के प्रति समक्षता चाहिए। पीठ की तरह कोई होनी ही नहीं चाहिए। सबके प्रति सम्मुखता ही धर्म है। पीठ देना कायरता है, पलायन है। प्रेम जो निखिल के प्रति है वह विवाह से टकरायेगा नहीं। पत्नी एक व्यक्ति है—इसी तरह से प्रेम इस के द्र के बजाय पत्नी के कद्र के बजाय किसी अमुक व्यक्तिगत केंद्र में जायगा, तो शायद उनमें टकराहट हो सकती है तभी प्रश्न भी पता हो सकता है।

—पर पत्नी स्वयं ऐसा करती है तो क्या वह अपने समाज के प्रति या अपने पत्नी रूप के प्रति भी याय करती है ?

✽ मैं समझता हूँ कि अपनी आत्मा के प्रति और इस तरह से गृहस्थ के प्रति और इसके आगे जाकर समाज और समष्टि के प्रति भी याय तभी हो सकता है जबकि आदमी, स्त्री हो या पुरुष हो अपने प्रेम को घेरा बंद करके गृहस्थी में नहीं घेर लेता है। तभी याय कर सकता है अपने प्रति और गृहस्थ के प्रति। इसलिए प्रेम विवाह का पूरक ही है पत्नी के लिए भी और पति के लिए भी। पत्नीव्रत अथवा कि पतिव्रत शब्द को प्रेम के निपट के रूप में लेना मैं समझता हूँ विवाह-सम्प्राप्ति ही गिर जायगी।

✽ एक बात और मैं आपसे पूछना चाहता था कि आज की हिंदी में जो कि यह गार्स्त्रीय तत्त्वा से मुक्त होकर, जो य प्रभाववादी कहानियाँ लिखी जा

रही है उनमें आपको हिन्दी साहित्य की कौन-सी सभावनाएँ दृष्टिगत होती हैं ?

—मैं समझता हूँ कि शास्त्रीय तत्त्व के प्रति बुद्ध बहुत आग्रह नहीं है। ता यह क्या सृष्टि के लिए दृष्ट ही है। सजन कम के लिए शास्त्रीय बाध की जो निभरता है, अच्छी नहीं है सहायक नहीं है। आज की कहानी में उन्नत निभरता उत्तरोत्तर कम होती जा रही है यह मुझे अच्छा ही मालूम हाता है। सभावना का चिह्न है, यह मेरे लिए तनिक भी चिंता का विषय नहीं है।

‡ लेकिन इसमें शिल्प के प्रति एक विनाय सजगता जो आ गई है उससे प्रति आपके क्या विचार है ?

—मैं समझता हूँ शिल्प के प्रति सचेत सजगता भी एक प्रकार की शास्त्रीयता ही है वह भी दृष्ट नहीं है।



कहानी में अपेक्षणीय और उपेक्षणीय

✽ नई कहानी की इन दिनों बड़ी चर्चा है लेकिन जेनेट्र जी, कहानी में नया क्या और पुराना क्या ?

—मुझे चचा का पूरा पता नहीं है। कहानी में विचार में नई ही हो सकती है। कारण घटना का जगत में घटती है वहीं समय से बंधी होती और पुगनी पढा करती है। कहानी की घटना जागतिक और सामयिक न हाकर मानसिक हाती है इसलिए वह सनातन बन जाती है। पाठक के मानस पर पढने के साथ साथ घटित होत जाने के कारण वह नित-नूतन प्रतीत हो सकती है।

मैं अपने को कहानी-लेखक नहीं मानता हूँ यानी वह लेखक, जिसे साथ ही कहानी के विधि विधान का जानना भी आवश्यक होता है। मैं कहानी के गिल्प अथवा कि गये पुगन गिल्प के बार में देखकर हूँ और रहना चाहता हूँ। जाता होने से मुझे लेखक हान में बाधा पढने का भी डर है। पान सृजन के काम में अकसर बाधक हुआ करता है। छत्रकता वह है इसलिए कहानी के मामले में अनता का मैं अधिक कायन हूँ और विनता से सदा भयभीत रहता हूँ।

यह मेरी अपनी बात है। उससे आप देखेंगे कि नई पुरानी की चर्चा या कहानी-मम्ब-धी काई भी चर्चा मुझ से अलग किनारे ही छूट जाती है, मेरे काम से बहुत सगत नहीं हा पानी।

जो नई के पीछे रहते हैं या पुरानी के आगे रहना चाहते हैं ऐस सब लोग कहानी के बाजार में और उसके गोज ताल में भटक जा सक्त हैं।

कहानी की सृष्टि बाजार में नहीं उस निमित्त गुहा में है जहाँ पीडा अपने लिए स्थान पाकर दबी-दुबकी रहती है।

॥ अनेत्र जी एक ओर आपन कहा कि कहानी नई ही हो सकती है दूसरी ओर यह भी कि वह सनातन है। इससे क्या विरोधाभास नहीं है ?

—विरोध का आभास ही है विरोध नहीं।

॥ सा क्या ? इससे मरी जिनासा सा त नहीं हुई।

—क्षण सदा ताजा होता है। लेकिन उतर कर वह पीडा का बनता है—वह गहन पीडा जहाँ दुःख और सुख व्यथा और आनन्द एकमेक हो जाते हैं—तो वही क्षण सनातन हो जाता है। वह कभी नहीं बीतता और शाश्वत बना रहता है। इसी से कहते हैं कि शाश्वत का अस्तित्व नहीं है। है तो क्षण ही शाश्वत है। यानी एक साथ जो पुरातन और नितनूतन हो वही सनातन है। कहानी में सनातनता का प्राण चाहिए। बाकी सब ऊपरी है अदल बदल सकता है फगन है, साज सज्जा है, पहरावा और प्रेजेण्टन है।

॥ इससे मरी दावा दूर हुई। आपका आग्रह यही है न कि सनातन और शाश्वत ही कहानी का प्राण है। जिस नया कहा जा सकता है और ऐसा नया पन आने वाले काल के सन्ध में पुराना पड़ जाएगा। है न ?

—यही तो मुद्दिल है कि बढ़ते-बढ़ते क्षण बीत चुनता है और नया ही पुराना बन जाता है। गये के नारे पर कशन की दुकानें खना करती हैं। क्या न उन निपुणा का भी बारबार खनता रहे जा बन्तत फगना पर पलते हैं बन्तते फगनों की पूँजी से चलते हैं। इस निमित्त यह उचित हो सकता है कि उम चर्चा में थोड़ा समय हम उसी तरह दे दें जस कलय में द निया करते हैं। अधिक वही मत्व और मार मान लिया जाएगा तो प्रशान बड़गा दगन कम होगा। यह लाभ की धान नहीं होगी।

॥ मूल बात तो यह है कि कहानी का जन्म कहानीकार की पीडा में है और पाठन के लिए उसकी मायबता इसमें है कि कहानाकार की पीडा कहानी द्वारा सम्प्रति हो उनक जाने मुख नृग स जुनी है। क्या यही कहानी के आशय का रहस्य नहीं है ?

—हाँ कहानी द्वारा लेखक की सम्पन्नता अनेक पाठकों से जुड़ती है, यही उसकी सच्ची सायकता है। अर्थात् एक अनक में घटता व्याप्त होता है।

॥ जैनेन्द्र जी, आपने कहा कि जान कहानी के माग में बाधक है। कहानी छलकने में निकलती है। आपका दार्शनिक क्या आपके कहानीकार के माग में बाधक नहीं है ?

—उहून बाधक है लेकिन दार्शनिक में ही रहा ? मैं अपने को निपट जिज्ञामु मानता हूँ।

अक्सर अपने ऊपर परोक्षी और व्यक्त जहाँ तहाँ स्पष्टता हूँ। मुख्य बात उसमें यही रहती है कि जनेन्द्र यह भी है वह भी है उसकी हर बात यह भी है वह भी है। दार्शनिक का यह लक्षण तो तभी होना चाहिए। पर मेरी गति सचमुच एमो हो है निश्चिति मुझे प्राप्त नहीं है। बल्कि जो विपत्ता है, उसमें स हट और आप्रह और आदग उपदेश निकल आते है और स्नेह प्रम सुचल जाते है। मुझे उन परोक्षिया और बटाभा में मदद ही बड़ा रस मिला है और मैं उनसे पूरी तरह सहमत हूँ। मेरी सी गति भगवान किसी को न द।

जान की जह अह में है। प्रेम अह के विसजन का नाम है। इसलिए जान और प्रेम में सना लनाई चलती है। मैं प्रेम का बिन बिना गुलाम हूँ। प्रोह करके जान की पवित्र में उसे बँट सकता हूँ ?

कहानी का मैं प्रेम तत्त्व में जुड़ा लेखना चाहता हूँ। विच्छेद जहाँ दीक्षता है जहाँ जानकारी और जवाबदारी स्नेह की इस सहानुभूति का दया डालती है वहाँ ही मुझे अरुचि और अनृप्ति सना बना रहती है।

॥ जनेन्द्र जी आपने कहानीकार जान से इकार किया। किन्तु आपके अतिरिक्त आपके कहानीकार होने से बिन इकार कर सकता है ? दार्शनिक होने से आपके इकार का भी इसी रूप में लना होगा। अब मैं आपसे कहानी के उपयोगिता-मर्म पर उसका दग सम्बन्धी दायित्व पर राष्ट्रीय दायित्व पर प्रमाण डालने का अनुरोध करता हूँ।

—इंकार कहानीविद् होने से किया है, कहानी सग्रहों के भाग पर भाग निकली पर कहानीकार होने से इंकार मेरा कस चलेगा ? ज्ञान से इंकार है, धम का स्वीकार है ।

देग को मैने नफ़से मेदेखा है । उससे बाहर तो आदमी ही आदमी दीखते है नक़ने की तरफ़ यदि अपना दायित्व में मान लू तो काम बहुत आसान हो जाएगा । मैं वह आसानी नहीं चाहता । नक़ना गणित व शको के और ड्राइंग की रेखाओं के काबू में आ जाता है और तत्सम्बन्धी बढ़िया से बढ़िया योजना बिना प्रेम व योग के परिपूर्ण बनाई जा सकती है । मेरी हालत यह है कि मैं उस कर्म्यस्त से परेशान हूँ जिस प्रेम कहते हैं । दूमरे सबको भां उसी से परेशान पाता हूँ । रेखागणित या अंकगणित में से मिलने वाला सा त्वना राजनीतिक को प्रम न करनी है वट उससे स्वास्थ्य और बल पाता है । मुझ में रोग गहरा है और उसका उपचार साहित्य में से भी पर्याप्त मिल नहीं पाता । कभी धम की भी आवश्यकता जान पड़ती है ।

मानव प्रविण सामने है मानव जानि का बन्नी यकन भूत पक्ष है । व्यक्ति की एक्ता में जानि की एक्ता सम्प न एक निष्पन्न होने ही वाली है । बाकी एक्ताओं की मुझे चिन्ता नहीं है । मैं समझता हूँ कहानी को भी उस चिन्ता की आवश्यकता नहीं है ।

यह जो धारणात्मक है जिनको अह ने टूट और पुष्ट करके मानो जन्म ल गच बिना निया है वह सब सापेक्ष है । जो चाहिए वह मानव व्यक्ति की निरपक्ष स्वीकृति है । निचार यदि प्रथम और व्यक्ति द्वितीय होगा तो दृश्य उपस्थित हो सकता है कि अमुक धम विचार मन विचार या दन विचार व लिए हजारान्नाया की तरबलि दी जा रही हा, और निरन्तर निर्वेण भाव सनी जा रही हो । साहित्य में और साहित्य व अतगत कथा-कहानी से अनेका है नि यह व्यवस्था व ऊपर व्यक्ति की प्रतिष्ठा करे और सत्र प्रचार व विवागों के दीप पर मानव को मत्य रूप में अभ्यथनीय बनाए । साहित्य का दायित्व है सो यह है । यह दायित्व हर वचारिक मान्यता या जातीयता अथवा राष्ट्रीयता

से उत्तीर्ण ठहरता है। सब पूछिए तो इष्ट और तप्त राष्ट्रवाद ही आज का सबट है और युद्ध के मूल में भी वही है।

✽ तात्पर्य यह है कि कहानी जातीय राष्ट्रीय आदि आरोपित प्रयोजना से दूरी होनी चाहिए यानी जीवन की ही तरांगी हुई फाव होनी चाहिए ?

—दूर की जगह मुक्त कहिए। अर्थात् कहानी अंदर से रिक्त नहीं हो सकती। जीवन किसी ऐसी अतिमत्ता का नाम नहीं है जहाँ राष्ट्रीय अथवा जातीय सब प्रयाजन समाप्त हो जाए। अर्थात् जीवन का हर चित्र और साहित्य की हर कहानी उस प्रकार के नाना प्रयोजना से अछूती नहीं हो सकती। हर कोई मीमितता में रहता और जीता है। जीवन का अर्थ सीमा का अस्वीकार नहीं है। सारे प्रयाजन सीमा के साथ हैं लेकिन आस्था असीम की ओर चलती है और वही मूल पूजा है। उस आस्था से सब प्रकार के सब प्रयोजन पृष्ठ होते हैं नष्ट तनिक भी नहीं होते। किन्तु जब हम प्रयाजन की ही अपन आप में पोषणा और पालना चाहते हैं तो यह हमारे के, प्रयाजन से टकराने में आ जाता है इस तरह स्वयं राग विदेग द्वेष पर चलन लग जाता है। प्रयोजनीयता के तल पर साहित्य को उतारने में यही खतरा है। आज आवरणना के दबाव में आकर हम राष्ट्रीय रचना माँग सकते और उनकी अभ्यथना कर सकते हैं, लेकिन काम निकलने पर कल की वह हमारे लिए भूत जान लायक पणाय बन सकता है। जिसका यह भाव्य हाता हा उसे साहित्य नहीं कहते।

✽ जैन द्र जी 'उमने कहा था स सबर नई कहानी सब हिंदी कहानी की प्रगति के बार में आपका क्या विचार है ?

—विचार सराब नहीं हैं इतना जानता हूँ। क्या है यह बताने लायक मनी सही उन्हें नहीं जानता। कहानी को मैं धारा नहीं मानता कि उसे गंगात्री से निकलकर हिन्द महासागर में पड़ने वाली गंगा है। हर कहानी का अपना व्यक्तित्व होता है और सब व्यक्तित्वों मिलकर कोई एक धारा बना लेती हैं जो बानागुप्त में स बढती है, यह धारणा भरी नहीं है। बुद्धिवादियों द्वारा

पश्चिम से लाए हुई परिपाटी यह चल पडी है जो इतिहास की भाषा में ही जीवन और जगत का समझना चाहती है। मेरे पास कोई कहाना यह मानने का नहीं है कि अगर दो हजार वर्ष पहले महाभारत लिखा गया तो गुण में आज सवरे लिखी गई मरी कहानी उससे ठाक दो हजार वर्ष जागे है। समय के अर्थ को इस रूप में समझना केवल स्वाथ से लगना और परमाथ से दूर होता है। हर नया लेखक आगे है और उसने कहा था नाम की कहानी मील के पत्थर की तरह बस अपनी जगह गडी रह गई है। ऐसा मैं नहीं मानता। उस प्रकार से साचन की मरे लिए कभी आवश्यकता नहीं हुई। ऐतिहासिक भाषा से अलग नतिक भाषा में साहित्य विचार हो तो मैं समझता हूँ यह अधिब साधक और मारगम होगा। तब समय का प्रवाह हम को नहीं बहायेगा और हम बिना स्थिर मूल्यो को पहचान और पकड सकेंगे।

३ साहित्य को अथवा कहानी का ऐतिहासिक भाषा में नापने पर मरा आग्रह नहीं है। किन्तु क्या आप यह नहीं मानेंगे कि उसने कहा था की स्थिति से बढकर कहानी जिसमें हिंदी कहानी ही नहीं अथ भारतीय भाषाया की कहानी भी सम्मिलित है आज हमारे साहित्य की वह विधा बन गई है जिसमें यह विद्व-साहित्य की समता कर सकती है ?

४ ता क्या मैं यह मानूँ कि 'उसने कहा था कि साहित्य की समता नहीं कर सकती, और वह केवल हिन्दी साहित्य अथवा पुरातन साहित्य है ? जी नहीं मैं उस तरह नहीं साचता। हर बूट अगर वह अपनी जगह निमल है तो विश्व ही नहीं ग्रहाण की निमलता में योग्य बन जाती है। विश्व की भौगोलिक एकता और अपनी भौगोलिक विस्तार की ओर अधिब सम्भ्रम से देवने की आवश्यकता नहीं है। स्वयं हाकर आचलिक हाकर प्रादिक होकर रचना सहज भाव से सावभौम हो सकता है। प्रत्येक प्रेम का स्वच्छता एवं अविश्रुता का है।

आज स्वाकार करना चाहिए हमारी मांग मूख्य की ओर बढ रही है। पहन मूख्य में चला जाता था। प्रयोजनाधिक रचनाएँ मन को भा जाती थीं।

एक तन्त्र असे तत्र समाज का मुद्दा और कुरीति का निवारण मानो कहानी-लेखन के प्रेरणा-सूत्र बने रहें। 'नई कहानी' अवगाहन में जाता है। यह उसकी प्रगति शुभ है। लेकिन यह तत्र समग्र काल की ही गति है और जीवन विकास स्कूल से सूत्र की आर चलना ही है। आज सूत्र सवेदना का व आकलन का प्रयास अधिक शीघ्रता है घटना व घटाटोप का आग्रह कम है और यह शुभ लक्षण है।

अब बूढ़ के महत्त्व को घटाना मेरा उद्देश्य नहीं। मैं तो केवल यह कह रहा था कि गत वय में प्रमत्त, जैनेन्द्र योगदान, अन्य व द्रुगुप्त विद्यानकार और मोहन रावण जाति कहानीकारों ने समग्र रूप में कहानी का इनका कुछ दिया है कि यह स्तुत्य और प्रशंसनीय है।

—जनेन्द्र का गिनती में बाहर कर दीजिए। वह उत्तर में ज्यादा मनमाना है। न भाषा को संवारता है और न गल्प का। एक अल्पकाल का विचार की समा में के अल्पकाल में रचना चाहिए। यह मैं किसी निष्ठा के प्रभाव में नहीं कह रहा हूँ, वस्तुनिष्ठ विचार की दृष्टि से ही कल्प की दृष्टि से रहा हूँ।

अन्य रचनाकारों में प्रेमचंद और यशपाल मुझे व प्रतीत होते हैं जिनके पास कथ्य है और तन्त्र-की पुष्टता और निष्ठा है। गल्प और कला इन दोनों का लिए साथ नहीं है और यह श्रवण की बात है। अन्य गहन जाते हैं और सूत्र-मता को हनान किया चाहते हैं। लेकिन कला मानो उनका निकट साध्य हो जाता है और कथ्य कथन की मीमांसारी में गीण और भीता पड़ने लगता है। चद्रगुप्त जो बड़े स्वस्थ लक्षण हैं इनका कि इसी कारण न उनसे ईर्ष्या होती है न उदाजन मितना है। मुझे लगता है लेखक की अवश्य किंचित हीन और असाधारण होना चाहिए। चाहिए स मत्त-प्रधानता ही यह हाता है। चद्रगुप्त जो यशपाल-की ओर मफने। मान्य रावण की कहानिया मुझे सदा भिषाता और दृती रही हैं और यह मुझे अच्यदा लगता है कि जागरण कथा-य का यह कथा है और रण साध नहीं दत्त। मैं बड़े चाप से दूमे लक्ष्मी की भी कहानियाँ, जब हाथ आती हैं पठ जाता हूँ और कुन मितकर मैं देख रहा

हैं कि हमारा संवेदन और संव्यय सूक्ष्मतर होता जाता है और वातावरण की प्रतिष्ठा बढ रही है। सुधार या उद्धार के आग्रह में वातावरण पर बलात्कार होने लग जाता था और प्रेमचंद जी में यदि इसका अवकाश था तो यशपाल जी में और अधिक है। मत्स्य अधिकांश तो इनकी कहानी में समा रहता है, पर कभी उसका ऊपर भी बैठा हुआ दीखने लग जाता है।

मानना होगा कि आज के दिन कहानी सबसे सगम्य माध्यम है। यो तो उपयास बड़ी उपलब्धि है और प्रभाव भी उसका घना होता है। लेकिन समय की गति में द्रुतता आ रही है और उपयास का कलेवर उस पर बाधित पड सकता है। कहानी प्रवाही है और चहलकाय नहीं हो सकती। यह अधिक समयानुसून है और कहानी पर एक तरह अधिक दायित्व ल आती है।

आजकल जाह-तहा दीपन वाली कहानियाँ के आधार पर मैं यह कह सकता हूँ कि हिन्दी के लेखक उतने ही प्रबुद्ध और जाग्रत हैं स्थिति के प्रति उतने ही तत्पर हैं, जितने देश की अथवा विदेश की दूसरी भाषाओं के माय लेखक समझे जा सकते हैं। डर यही है कि कला और शिल्प यदि अपने आप में साध्य बनेंगे तो अनामगी ऊपर आ जाएगी आत्मदान अकृण्ठित हा नहीं पाएगा कला की जडावट मजावट का उसकी घिम माज का कही कुछ आधिक्य और अतिरक तो नहीं हो रहा है, एसी शका हाती है। लेकिन प्राणवग इस कौशल की अतिगमता के लिए अवकाश नहीं छोडने वाला है और आज के विश्व का या हर कौनों का आकुलित एवं विचलित जीवन स्वयं इस अतिरक का उपचार करता बना जा सकता है।

कहानी : प्रेरणा, प्रभाव और शिल्प

१४ जादू जी, हमारी भेंट का आपको स्मरण होगा। उसमें आपने 'अहिष्ट जादू' की विचार की सभा में बहिष्कृत रखने को कहा था। आज हम उगी गिनती से वाहर व्यक्ति पर अलग से चर्चा करेंगे। बहिये, इसमें आपने कोई आपत्ति तो नहीं ?

—आपत्ति हा तो भी क्या आप टलने वाले है ?

१५ नहीं लेकिन इस प्रकार स्वच्छा से बहिष्कार का माग अपनाकर क्या आपने अपने को विशिष्टता प्रदान नहीं कर दी ?

—सौलिए कहता था कि आपत्ति से क्या फायदा है ? अथ बाण आपकी तरफ से गायद पीछे आयेंगे, पहले इसी प्रतिष्ठा वाले का मेल लिया जाए।

हाँ, आपकी बात सही भी हा सकती है। प्रतिष्ठा अपनाते का भी वह बहाना हा सनता है। लेकिन क्या प्रतिष्ठा ऐसी बुरी चीज है कि उसे अपनाने से डर हो ?

क्या अच्छा यह न होगा कि प्रतिष्ठा अप्रतिष्ठा को अलग करके बात आगे चलाई जाए, क्याकि हमे हमारे बीच सगाय आ जाएगा और हतु परस्पर-विहृद पड जाएंगे। उस तरह चर्चा बेवार हा जाएगी।

१६ अपनी उस दिन की भेंट को मैं अपूण प्रानता था। जने द्र का व्यक्ति और शिल्प विनिष्ट है यह स्वीकार करना होगा। इसलिए उस पर विस्तार से विचार की आवश्यकता हुई।

—अच्छा आप कहते हैं ता स्वीकर किया। फिर ?

॥ फिर हम आरम्भ में चलेंगे—और मैं आपसे कहानी लिखना आरम्भ करने की मूल प्रेरणा पर प्रकाश डालने को कहूंगा।

—मुझे मूल का ठीक पता नहीं है। एक बंधु प्राति और उसी तरह के कामों में उलट कर वेकाए हो गए और वेचारी में काम खाजते हुए दिल्ली आए। बड़ा कागिष स उनसे प्राथमरी स्कूल में मुद्दिरमी मिली। आत्मी ऊंचे विचार के थे और कथाभिमन्यु ३। चौथे अर्जे तक का स्कूल और उन्नीस वही गाय लिखी पत्रिका जारी की। बड़ी सज्जधज और उद्यम में उसे गँवारते थे। उसी व निष्प पहनी दूमरी तीमरी कहानी तिया गई हागी। निरत वक्त कहानी है यह भी गता मानूम हाता था। निटठी आती थी और जा मन आया लिख भजता था। पत्नी कहानी में सायत यय्य के साथ उपन्ये दने की मीने ठानी हागी। ता एक पैराग्राफ के बाद एक नता उमम अग्रजी में बाल पन्त थे। उम अग्रजा की बकनुता के दा चार बावय निगन पर पता चला कि जहाँ चीज जाने वाली है वहाँ चटमात के बच्च हागे अपनी कौन समझेगा ? अन्तिम उन रात लिया गया और वह पीछे एक प्रम के नाम में छपी। उसकी जगह लगे हाथ व घटना तिय भजी जा कुद् गता पहल मर साथ घनी था। उमके आगे भी कल्पना से कुछ जोड़-जात तिया और वह 'फाग्राफा बन गई। उसी हस्तलिखित पत्रिका ज्योति के लिए नेत और चारी बगीं। य तीनो वन्त निया पीछे दूमरी पत्रिकाजाम छपी। सन्तिन य मर निरत वक्त प्रेरणा का प्रश्न नी न हुआ था। बंधु ध चिठ्ठी का उत्तर ऊरुता गता था और मैं मनमाना तिय भजता था। क्या पता था कि य रचनाए कहानी कथायगा और मुझमें एक तिन जवाय तक तलव होगा। मूल प्रेरणा का उकर वनाय्य अर मैं बहू ता क्या कहू ?

॥ जने द जी आपन कहा कि अपना पहनी दूमरी तीमरी कहानियाँ तिमने कवन आपना यह भी नी मानम गता था कि वे रहानी हैं। नगभय एगा ही आपका वह वनाय्य है जा मुझे स्मरण पड रहा है कि कहानी के क्षेत्र में

जनेद्र का प्रथम राजमाग से नहीं हुआ, किंतु क्या आप यह नहीं मानते कि मूल में आपके अन्तस्त्व का वह भाव वेग था जो व्यक्त होने को निरंतर यत्न था और आपको अपने आपको उठेन देने के लिये विना किय डालता था ?

—अदर कुछ भाव या यह मानन में उच्च क्या हो सकता है। लेकिन वह बंधु मुन्निम न बने होते और उहाने पत्रिका न निकाली होती, तो अधिक सम्भव था कि मेरा लिखना ही न हो पाता। यानी लिखन की कोई विवगता में अपन जीवन में नहीं देलता। बरसों बरस गुजर गए हैं और मैंने एक हुरफ नहीं लिखा है। अतः प्रेरणा की काइ विवगता हाती ता यह हरामगोरी मुझ से नही हो सकती थी। अभी देखिय कि लिखन के सिवाय कोई मन काम का काम नही किया है, लेकिन जिता लिखा है उता तो कोई प्रामाणिक कायकर्ता तीन साल में लिख फेंक सकता था। नही बसी कोई भीतरी बेवमी मुझ में नही थी। मुझ में न कुछ बकनव्य है न सदा है। जम बोल लता हू वैस ही लिख भी जाता हू। बहुत अधिन आयास प्रयास की मुझे आदत नही है। न एसा कुछ मेरे पास मालूम होता है कि जिस पर आयास गच किया जाए। पाठको और आलोचका की ओर से जो कभी मुन पहना है उसको अगर भुना दिया जाय ता मैं अपने बार में किसी भूल में नही हूँ। अर्थात् मैं जानता हूँ कि मैं नही जानता।

४ आप कहत ह कि लिखन के सिवाय कोई मन काम का काम नही किया। क्या लिखना अपने आप में सब कामा में बढकर काम नही है ? महमूँ गजनवी के भारत पर आक्रमणा या उमरु साम्राज्य का आज कौन याद रखता है ? पर उसी के दरबार के फिरंगीमी का गाननामा आज भी एक जावित खात है। शासक और सत्ताधारी जो राज्या और साम्राज्यों का निर्माण करत हैं वे इतिहास में स्मारक स्तम्भ की भाँति जहाँ के तहाँ गड़े रन पात हैं। पर लेखक विचार के प्राण धग में संचारण के कारण गताश्रिया के आर-पार जीवित रहता है। फिर लेखक के काम का हम छोटा कम मान सकते हैं ?

—नही नहीं लिखन की तारीफ आप मुझसे ही कीजिये। उससे अहवार

उद्दीप्त हो सनता है और वह धाटे की बात है। आप कहते हैं लिखना बड़े काम का काम है। काम का नहीं यह तो मने भी नहीं कहा। कैम वह मकता हू ? उसी की खा रहा हू नहीं तो नौकरी दूढ़ने गया तो क्या बीस पच्चीस रुपए की नौकरी भी मुझे मिल सकी थी ? एकदम नहीं मिल सकी थी। अब यह मोका है कि आप तक से बात हो रही है। यह अवसर जिसकी बग़ैलत आया है वह लिखना सचमुच बकाम नहीं कहा जा सकता। लेकिन इससे आगे आप मुझे छत्र में नहीं डाल सकते। जैसे और काम हैं ठाक कम ही यह लिखने का काम हो सकता है, उनसे कम या अधिक मूल्य का म उसे नहीं मान सकता। महनती से और किसान से म अपने का किसी वृत्ते भी कोई खास नहीं समझ सनता हू। सच यह है कि लिखना कोई काम ही नहीं है। काम होता तो क़रीर जुताह क्यो बने रहते और तुलसी ने भी कभी अपने का 'रायल्टी' वाना कवि क्यो न माना होता अत तक भिक्षुक क्यो माना होता ? यह सब इसलिए कि लिखना काम नहीं होता है। यह तो पश्चिम ने उस घ घा बना लिया है और कम्युनिज्म न तो सबसे ही ठाठ का घघा बना दिया है। समाज और राज की महिमा ही कहिये कि जो चाहे बना दे। सच म गहर जायें ता जान पडेगा कि लिखन को काम मानना और घघा बनाना घुम नहीं है। फिर भी अगर उसकी दुहाई दी जाती है ता म उन दुहाई देने वालो को घघवाना भी द सकता हू क्योकि अत म उससे मेरा स्वाध ही सिद्ध होता है।

■ कि-तु जनेन्द्र जी जूताह और भिक्षुक क्यो सम्पातीत नहीं ? अपनी वृत्ति से अतिरिक्त कारण स ही क़रीर और तुलसी हमारे लिए अविस्मरणीय हैं, वसे यह ठीक है कि समाज के किसी व्यक्ति का पेट दूसरो की ठठरिया क पसीने पर न पनपे। लखक और कानाकार अरने की भौतिक अथवा धारीरिक थम से सम्पृक्त करने का दृष्टिकोण अपनायें और अपन का जन-जीवन के समीप रखें इससे अधिक घुम एक अयस्कर और क्यो हो सकता है ? अब जनेन्द्र जी, आप यह बतायें कि प्रगचदजी क सम्पक म आप कव आये और उनसे किस रूप म प्रभावित हुए ?

—मैं चिट्ठी से उनमें पहले पहल सन २७ में मिला हूँ। स्वरूप सन् २८ के अंत में।

—सब से ज्यादा उनकी देवाकी और वेगानगी का मुझ पर असर पड़ा। मैं नामी आत्मी के पास गया लेकिन मिनने पर मालूम हुआ कि जस उह मालूम ही नहीं है कि वह नामवर हैं। यों तो अनजान कहना उह मुश्किल है लेकिन यह जान उनके भीतर सब नहीं उतर सका था और उनकी साधारणता को उनमें नहीं छीन सका था। इसकी झलक उनके लिखने में भी है। मानो लिखने वाला लिखे गए चरित्रों से अलग और अलग कुछ है ही नहीं कुछ रहना ही नहीं चाहता। यह त्रिगामी आदमी के लिए कम सम्भव होता है। वह मानो ऊपर से लिखता है और चरित्रों को अपनी अधीनता में रखता है, उह स्वतंत्र नहीं होना देता। एम उनका व्यक्तित्व अचल तो बनना नहीं या बनता है तो वह बनता है जो स्वप्रतिष्ठ नहीं होता लखक व (अधिनाश मतवादी) प्रयोजन का उपकरण मात्र होता है। प्रेमचंद का यह निरीह स्वभाव मुझे ऐसा छ गया कि उसके लिए मैं अब तक उन्हें याद करता हूँ। पहली बार आय तो क्या दखता हू कि गली में सब कम्बल कंधे पर डाल और हाथ में भोला लटकाये चले आ रहे हैं, तार न छत, बस, धखबर चले आ रहे हैं। बोले— तार में फिजूल चारह आने डालने से क्या फायदा था? आखिर घर तो आ पहुँचा न। यह चीज अब बहुत सोजता हूँ, लेकिन बहुत ही कम मिलती है। बाकी प्रतिभा वगैरह तो सब ठीक है, लेकिन यह चीज जैसा जड़ की है। जैसे जड़ ही न हो तो ऊपर, सोचिये, खिलेगा क्या?

✱ जनेन्द्र जी आपके कहानीकार के निर्माण में मात्र सयोग प्रेमचंद के सम्पर्क के अतिरिक्त जिन सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियों का प्रभाव रहा हो, उन पर प्रकाश डालिये।

—मुश्किल है और मेरे पास इस बार में कुछ प्रकाश नहीं है। इतना जानता हूँ कि जब मरा लिखना हठात् शुरू हुआ तब मैं बहुत बेहाल और बन्हाल था। यहाँ तक कि मरने की बात साचा करता था। ऐसे में कौरा तब सिद्धांत

काम नहीं दे सकता, न प्रिय हो सकता है। हर तत्त्ववाच को मानो सर्वज्ञ का वसोटी पर उतरना और अपने को खरा साबित करना होता है। सबसे प्रथम तथ्य और मूल तत्त्व है दुःख—इस बौद्ध कथन का भी शायद यह सार है। इसी अनिवायता में स विचार को मानो कहानी बनाता पट गया। इससे अधिक मैं कुछ नहीं कह सकता।

इधर उधर की जा किताब हाथ आती मैं पढ़ता तो रहता ही था। लेकिन उस पढ़ने में स लिखना जाया या कभी आ सकता था यह मैं नहीं कह सकता। लिखा शायद बाहरी संयोग के साथ ही हुआ। यहाँ दिल्ली में एक हिन्दी सभा बनी थी। मरा सन २१ में भास्करलाल जी से परिचय हुआ था जिसमें साहित्य का सदस्य तनिष ७ था। लेकिन वह एक बार दिल्ली आए तो चतुरमन जी के यहाँ ठहरे। ऐम चतुरमन जी की कृपा और उत्तरता से हिन्दी सभा में उपस्थित होना भिन्न गया। पहली कहानी वही पढ़ी गई हागी मुझे एक घटना की याद आती है। एक बड़े मानी विद्वान् घ। ध क्या अभी हैं। वही आगा से उह कहानी सुनाई बड़े धम में उलाने सुनी। अत में यदि कुछ बात उनमें मालूम हुई तो यह कि भाषण दिया नहीं जाता किया जाता है। कहानी के लिए यानी उस पर प्रकाश के लिए मैं उनसे ओर देखना रह गया। पर जो वहाँ था या वहाँ से आ सकता था वह कुछ गया यह किया और किया का फल था। ऐमा मालूम हुआ था तब कि कंगो इत्यादि सत्र कृपा १ दिया किया सम्बन्धी ज्ञान ही साधक है। आप गांधी सत्र है कि इस गिणा गिणा के अधीन मैं कहानी को महत्त्व ही कम दे सकता था। उन परम विद्वान् का गालोचना का या गालोचन का मैं आदग मानू या नहीं, यह मैं निश्चय नहीं कर सकता हूँ। लेकिन ऐमा अवश्य मालूम हाता है कि भाषाविद जिम ताक में रहना है कहानी रचना की दुनिया उममे गारी ही होती है। दरजी मन के दुःख की यात जानन की जरूरत में जिन्हु नही है उसका धन की नाप योग्य बस है। यद्यगाय का सचमुच वही गुर है। तनिष दरजीपना भूतकर वह पति आत्मी और किसी का भाई देना या पति वगैरह हा जाता है तब बान अवश्य दूगरी हा जाती है। यानी कहानी (भरे विण) गिल्प नहीं

है। वह सबेदन और सबेद्य है। उस प्रकार उसमें सीखने जानने को बहुत कम रह जाता है। या कहिये कि जो सीखा जाना जाता है वह सब वहाँ उपकरण भर रह जाता है अर्थात् इष्ट नहीं आनुपगिक होता है। मतलब यह नहीं कि जिह मैन पढा है और जिनसे रम प्राप्त किया है उनके प्रभाव का मैं ऋण नहीं मानता हूँ। लेकिन आगा है कि मुझे उनमें से किसी को याद में या नकल में लेने की आवश्यकता नहीं हुई है। उनका उपकार इतना हादिक है कि मुझे एक क्षण के लिए भी उपवृत्त बनने की याद नहीं आती। सच यह है कि दुनिया की और जिन्दगी की जो खुला पुस्तक सामने है उसको उहोने मरे लिए कुछ अधिक खुली बनाने में ही मदद की है। उस किताब के और मरे बीच में आने की किसी न काशिश नहीं की।

✽ जन द्र जी मैंने सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ वे प्रभाव के विषय में जिनासा की थी।

—सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक परिस्थिति की बात मैं क्या कहूँ? अठारह बय की अवस्था में मैं यालिग हुआ होऊंगा। उस सन २३ से अग सन ६३ तक इन तीनों प्रकार की या अग प्रकार की, जो परिस्थितियाँ यहा रही है वे उजागर है नहीं तो गिपोटों से उह जाना जा सकता है। जीवन में बाहरी जा घटनाएँ घटी उनका मल भी कृठ उनसे बिठा कर देखा जा सकता है। लेकिन परिस्थिति मेरे लिए कोई मन स्थिति से स्वतंत्र अस्तित्व रखन-वाला चीज नहीं है। उस दृष्टि से परिस्थिति की बात करूँ तो मरे जीवन का कच्चा चिटठा ही खुल निकलेगा। उस खालना मुझे मजूर नहीं है। न खुल इसीलिए तो क्या कहानी और उपयास हैं। जी नहीं, कच्ची चीजें आप मुझमें नहीं पा सकेंगे।

✽ जन-द्र जी, आपका रचनाकाल गांधी-युग रहा जिसमें एक महान हस्ती ने जन जीवन को भीतर तक भनभना कर जागत कर लिया। उस हस्ती का प्रभाव आपके और आपके युग के साहित्य पर वहाँ तक पडा ?

—उस तक को मैं तय नहीं कर सकता। मेरे मन में समग्रता और

समुक्तता की चाह रहती है। मुझे लगता है कि मुक्त पुरुष पूर्णभाव से युक्त भी हाता होगा। गांधी को म उसी चर्म योग के सम्भ्रम देखता हूँ। इतिहास के दूसरे महापुरुष उस तरह युक्त और युक्त नहीं दिखाई पड़ते माना द्रत के दो सिरे उनमें परस्पर टकराते हैं समन्वित नहीं होते। इसी से गांधी के प्रति मेरा गहरा आकर्षण है। घटनात्मक जो हुआ यानी मने कालज छाटा जल गया वह सब ऊपरी बात है। शायद उसका निदर्शन मरी रचना-जा मे जहाँ तहाँ मिल भी जाता हो। लेकिन जिसको गांधीवादी कहते हैं उसका राइ रती भी बोध मने अपने निगाह पर अनुभव नहीं किया है। वे याच नहीं करते हैं जो अपना बाध गांधी के प्रत्यु म से मुक्त हो जान पर भी उही पर टिकाय रखना चाहते हैं। जो किया उसम स म गांधी को नहीं देखता हूँ जो वह हुए उसी को सीधे देख लेना चाहता हूँ। उस तरह गांधी मरी अपनी मुक्ति म सहायक ही हो सने हँ मुझे बाध नहीं सरते।

■ इसी युग के एक अन्य महापुरुष रवीन्द्रनाथ को आप मुक्तात्मा मानते हैं या नहीं? यदि हाँ तो क्यों और नहीं तो क्या नहीं?

— मुक्त को शायद निगुण होना चाहिए। यानी कोई विशेषण उस पर सही सही बट न सके। गांधी महात्मा थे और गांधी के लिए दुष्कात्मा थे। कोई ऐसा गुरु नहीं है कि उसका प्रतिरोधी विशेषण भी उसी तरह गांधी पर लगाया न जा सके। पर रवि ठाकुर को बट निश्चय स हम कवि कह सकते हैं, और शायद अकवि कोई नहीं कह सकता। रवीन्द्र की विभूति सगुण है। गांधी को उस प्रकार रूप वण के ऐश्वर्य में म स्वेचना मुश्किल होता है।

■ जनेन्द्रजी आपने कहा कि कहानी के गिल्फ म आप विश्वास नहीं करते फिर भी क्या कहानी गिन्पहीन हा सरता है?

— नहीं हो सरती। पर क्या कोई गिन्पु ऐसा हो सकता है जिसके भीतर वह जन्मिल यत्र न हो जिसे मानव यष्टि कहते हैं? लेकिन एक अबोध भी माता बन जाती है और उसे उस जन्मिल का बुद्ध पता नहीं हाना जिसका निष्पन्न रूप उसका गिन्पु है।

कथा का शिल्प हो सकता है और उसको जानने की भी आवश्यकता हो सकती है। किंतु शरीर यत्र का कितना भी नान हो, क्या केवल उस भरोस किसी वैज्ञानिक ने अपने मन से शिशु की सृष्टि की है ? शायद नान अपनी खातिर सृष्टि मन से सगत ही नहीं है।

॥ तात्पर्य यह कि आप अपने कहानी शिल्प के विषय में विशेष जानकारी का दावा नहीं करते। यही न ?

—हाँ बिलकुल यही।

॥ लेकिन, आप लोग की इस धारणा के विषय में क्या कहेंगे कि आपकी कहानियाँ प्रस्ताव होती हैं ? साथ ही आप हमारी परस्पर की चर्चा में कभी कभी व्यक्त किए गए अपने इस वक्तव्य के विषय में क्या कहेंगे कि आपकी कहानियाँ धियोरम मन से निकलती हैं ?

—दोनों बातें ठीक हैं। प्रस्ताव होती हैं मेरी कहानियाँ क्योंकि प्रश्न मुझ मन है और ज्ञान नहीं है। फिर यह कि कहानी धियोरम मन से निकलती है, मानो अपने आन अनिवाय हो आता है। मैं श्रद्धा का विश्वासी हूँ लेकिन प्रश्न का अधिवासी हूँ। इसलिए प्रश्न मेरी कहानी में नोचता बाटता सा नहीं आता, बल्कि समाधान खोजता पूछता सा आता होगा। सत्तार प्रश्न है ईश्वर समाधान है। लेकिन मेरा ईश्वर सत्तार के प्रश्न को बंद नहीं करता है प्रत्युत अनंत का तब मानो उस खुला रखने का तमारा है। अर्थात् श्रद्धा मन में अनंत प्रश्न का समावेश सम्भव दब मचना और बना सकता है। बल्कि मुझे लगता है कि आस्तिक होकर ही प्रखर नास्तिक हुआ जा सकता है। अथवा नास्तिकता मन भी प्रखरता नहीं आयेगा, जड़ता बनी रह जायगी।

प्रश्न के लिए आवश्यक है कि वह जिज्ञासा रहे, आलोचना न बने। यह सम्भव श्रद्धा का योग से ही हो सकता है और मैं आशा करता चाहता हूँ कि मेरी कहानी के गर्भित प्रश्न में अहवात् का रूप नहीं रह जाता, अवादा और जिज्ञासा भले रहती हो।

॥ अच्छा, जनेन्द्र जी, आजकल कहानी के लिए आवश्यक समझे जाने वाले

बोधा—युग बाध तत्त्व बोध रस बाध, भाव बोध, सूक्ष्म बोध और दल बोध तथा अन्य अनेक बोधो को, आप कथा की आत्मा अथवा कथा गिल्फ के लिए वहाँ नव सगत और साधक मानते हैं ?

—मैं भी उन बोध-व्यूहा की चर्चा छपी देवता और कभी पढ़ता भी हूँ। पढ़ कर, भई चौकड़ी भूल जाता हूँ। बड़ तोगा की भीड़ के बीच कोई अनाड़ी पड़ जाए, तो उसका जो हाल हो वही मेरा होने लगता है। कहानी के मामले में बोध वाला माल मुझे जरूरत से भारी माना जाता है। गायक वह साँस कहानी में वही ऊपर अधर में विराजा हुआ रहता है या कहो वह अचानक साँस है कहानी के मम तन जाने का उपाय उसके पास नहीं है। बोध मानो बुद्ध स्थित तत्त्व है, कहानी की जान गति है। इसलिए बोध ही है जो कहानी को जड़ और निस्पन्द बना दे सकता है। हमारे नय बंधु जितन हिन्दी कहानी के क्षेत्र में आ रहे हैं सब खूब पढ़े लिखे होते हैं। इसलिए बोध के चक्कर में वे पढ़ें तो वे इससे अधिकारी मान जा सकते हैं। मैं अपने अभागे भाग्य का वृत्त हूँ कि उस अधिकार से वंचित हूँ। जीने से इतना घिरा हूँ कि अतिरिक्त जानने से आसानी से किनारे छूटा रह जाता हूँ। ऐसा लगता है कि वहद अक्षर-पाठी लोगो को कुछ निरक्षर पाठा की आवश्यकता है नहीं तो उनकी कहानी उनका साथ इतनी विद्वान बन जा सकती है कि सही राही जो न पाए। कहानी के लिए एक अकेला प्यार बहुत काफी है, फिर सार दूरमे बोध मध्य भी हा जायें ता कोई हानि नहीं। समझ में नहीं आता कि गान से फूट फूट कर ये जवान लोग प्यार को क्यों ठंडा बनाना जरूरी समझते हैं। ज्ञान से पहले ठंडा बना लेंगे फिर गब्दो के जार से उस गरमाना चाहेंगे। यह सब चक्कर जरूरी नहीं होना चाहिए और विनमर थोड़ा अज्ञ बनन की तयारी चाहिए। कहानी पर बातें के अवश्य करें जिनका क्या बात में है कहानी में नहीं है। बातों का क्षेत्र ही अलग है। कहानी में जिनकी कामना है उनको कहानी लिखनी पढ़नी चाहिए।

भाई मधुपाल ने एक जगह टीका लिखा है कि अपना माल बचने का सवात

भी आता है और वहाँ दम तरह की बातें बनानी होती हैं। उस हुनरमंदी का मामला हाँ तो सचमुच दम बाने में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। पर आगिर स्वाद की परप चखी में ही होती है बात कहने मुनने से सही परव नहीं होती।

✽ आप कहते हैं कि कहानी के लिए क्या अकेला प्यार काफी नहीं है। इसकी जरा और व्याख्या कीजिये।

—प्यार में व्यक्ति अनायास निम्न बनता है अर्थात् स्वत्व को निह्यावर कर डालना चाहता है। प्यार के अनिरिक्त जब हम अपने पास कुछ राक रखन है ता असल में उस बहाने अपने स्वत्व को ही अपने पास सचित और सुरक्षित बनाय रखना चाहते हैं। इसमें हम समीक्षक और आलोचक उन जात हैं और दोष सब हमारे निकट हमारे अपक्षा दोषम बन जाते हैं। हम नाता, वे नय। यह निमाग की स्वत्प्रवानी (Appropriative) वृत्ति है और इसमें स न जागतिक सत्य हाय आ मकना है न आत्मिक। यह एक प्रकार की स्वरति का ही रूप है। इसी से परम अनुभविया ने चेतावनी दी है कि विद्या अविद्या भी है पान अनान भी है। बोध की दुलाई से इसीलिए मुझे डर लगता है कि उसमें अनत अह का अजन और अचन आ जाता है और विसजन बच रहना है।

✽ क्या घणा भी आपका उक्त प्यार के अंतर्गत आती है ?

—घणा के अत्यताभाव में ही प्यार उत्पन्न होता है। घणा को समझें तो वह मूत्र में अपने प्रति प्यार का ही उत्कट रूप निकलता। स्वरत व्यक्ति चारा और घणा का अधिकार पा जाता है। जब यह घणा असह्य होती है और अपने प्रति हा चसती है ठीक उसी ढाण प्यार जग उठता है। प्यार के तत्त्वज्ञान में जान की विह्वुल जरूरत नहीं है। रोजमर्रा के उधल-मे उयले प्यार में भी आप एक घान पाइयेगा। आदमी जिसमें प्यार करता है पहले उसकी निगाह तब में बचता चाहता है। यानी अपने मद्रथ में एक हीनभाव की अनुभूति से प्यार आरम्भ होता है। उसमें प्रेमी आम और आम एक साथ पाना है। यह पूणा अपने से ही जो होने लगती है, अपने निज की रति से उठते निज स

सीस और ऊब हो आती है तब मानो पूजा अपने स बाहर की ओर जाती है । इसी को तो प्यार का अनुभव माना जाता है ।

इस तरह प्यार में स ही मैं मानता हूँ वह सच्ची घणा की अनिवाय और अमोघ शक्ति प्राप्त होगी जिससे हमारे परस्पर संबंधों में आई घणा अनावश्यक और व्यर्थ हो जाए । तब वह घणा निर्व्ययक्त होगी व्यक्ति के सद्भ से वह मुक्त हो जाएगी । अर्थात् पाप स ही होगी और पापी के लिए प्रेम को मुक्त करने वाली होगी ।



स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी-कहानीः एक विवेचन

॥ आज हमे विशपकर स्वातन्त्र्यात्तर हिन्दी कहानी के धार म बातचीत करनी है । इस सम्बन्ध मे पिछले दिना आपक वक्तव्यो से लगा है कि इस अवधि म कहानी ने प्रगति नहीं की है । क्या आप सचमुच मानते हैं कि पिछले वर्षों मे हिन्दी कहानी न प्रगति नहीं की ?

—कहानी ने प्रगति की है अथवा नहीं की है, मैं समझता हूँ यह शब्दावली ही सगत नहीं है । कहानी की प्रगति का कलकित्बलीयानी सामूहिक रूप से आँका जा सकता है एसा मैं नहीं मानता । होता यह है कि कुछ लेखक अच्छा लिखते हैं, कुछ बसा नहीं लिखते । दाना नरफ के लेखक हर बाज मे हाते हैं । मैं कहानी का सम्बन्ध समय स नहीं, रचनाकार व्यक्ति से जुडा मानता हूँ ।

॥ इसमें विरोध अन्तर नहीं जाता । अब मेरा प्रश्न है—स्वतन्त्रता के बाद के कहानीकार ने पूर्ववर्ती कहानी की अपेक्षा कहानी का आगे बढ़ाया है अथवा नहीं ?

—इस अवधि म बोधात्मक ज्ञान का मान मिला है भावोत्कष का नहीं । विद्वलपण का आग्रह बढ़ा है । आदस आभल हो गया है । यथाय की कुरेद-धीन करने में प्रयत्न अधिक सीमित हो गया है ।

॥ आज के कहानीकार का आग्रह है कि उसने समय और समष्टि के प्रति अपने दायित्व का ज्यादा शिक्षित और ज्यादा जिम्मदारी के साथ अनुभव किया है । इस धार म आपका क्या मत है ?

—समाज के प्रति सचेत भाव स दायित्व अनुभव करना उपयोगी नहीं

है। रचनाकार अपने को समाज से अनग मानकर ही बसा गयित्व आढ सक्ता है। नव कथाकार की संवेदना व्यक्तिया के दुखा के प्रति न होकर समाज नामक सस्या के प्रति हा तो उसका विशय अथ नहा बनता है। इसस अहम्मयता वढती है। में इसीलिए समाजवाद वा कायल हू। समाजवादी सहज अहवादी हो सक्ता है।

■ स्वातन्त्र्योत्तर कथा साहित्य की प्रमुख प्रगतिया न आचलिकता भी एव है। क्या आप समझते है कि यह प्रवृत्ति साहित्य के लिए श्रेयस्कर सिद्ध हो सकी है ?

—आचलिकता शब्द तो अचल संवधा है। लेकिन हां स्थानीयता जिसे लाकल कलर कहें उस पर विशेष ध्यान है। परिस्थिति को बारीकी न चित्रित करने वा आग्रह बढा है। यही आग्रह आचलिकता तक भी गया है। प्रवृत्ति गलत तो नहीं थी पर गायद अति हो गयी। परिस्थिति न बीच मानव भावना की स्थिति क्षीण बना दी गयी। परिस्थिति अपने आप न साहित्यकार के निवट पट ही तो है। उस पर मानव चित्त की क्या और कितनी गहनता अंकित हुई है, साहित्य की सफरता वा मुख्य मान यही है।

■ आज के लेखक वा यह भी आग्रह है कि उसने क्या को अपन पुषवतियों के रामेण्टिसिजम ने मुक्ति लिलायी है और उस यथाथ की भूमि दी है। आप इस कथन सं वहाँ तक सहमत हैं ?

—विनकुल सहमत नहीं हूँ। न रामास न विना साहित्य की कल्पना ही नहीं कर सक्ता। आज विनलेपण इतना बढ रहा है कि रोमास वा गाय जा रहा है। बौद्धिकता न हात्किता को ग्रम लिया है।

■ यह ता रही कथ्य की बात, अब में जानना चाहगा कि आप की राय मे पिछन वपों न गिल्प की दृष्टि सं विकास हुमा है अथवा नहीं ?

—गिल्प की दृष्टि से अवश्य विकास हुमा लगता है। सूचरता और सांरनिवता वा आग्रह बढा है। लेकिन बाहर की साज-सज्जा क्या कुछ काम दगी अंगर भीतर वा स्वास्थ्य क्षीण हो ? क्या दगन न यही नहीं घाना कि स्वास्थ्य स्वय सोन्दय है ? ऊपर की सौन्दय सज्जा स्वास्थ्य के अभाव में भाडा

तक लग सकती है। मुझे कई बार ऐसा लगा है कि शिल्प चातुय ने अमुक कहानी को बनाया या सवारा नहीं बल्कि दबा दिया है। यदि वस्त्र की बनावट और सजावट व्यक्तित्व को ढक्कर ऊपर उभर आती है तो अरुचि ही पैदा करती है।

■ अभी आपन कहा कि शिल्प की दृष्टि से अग्रश्य विकास हुआ है। आज के किन कथानगरों की रचनाआम वह शिल्प वैशिष्ट्य है जो आपके इस कथन की आधार भूमि बनता है ?

—यानी नाम चाहत हो ?

■ आपका अमुविधा होता मैं आसानी से प्रश्न वापस लेकर आगे बढ़ सकता हूँ।

—मुझे निमल वर्मा में शिल्प की सूदमता और साकेतिकता मिली है। साथ ही वन लेखन शिल्प की अधिभता और प्रतिशयता से बरी है। शिल्प के अधिभय की दृष्टि से मुझे गजेन्द्र पाणव का नाम याद आ जाता है। वहाँ कौशल के नीचे सत्त्व दब सा जाता है। और भी रचनाआम अदायगी और तज पर ब्यादा जार है। एक और भी बात है—लेखक आग्रकत सभी पढे लिखे होते हैं। एम० ए० से कम शायद कोई ही हो। उह अपनी विभता का पता रहता है। कहानी की कला क लिए मुझे अजता बहुत आवश्यक मानूम होनी है यानी कि लेखक पुत्र कुञ्ज जानना चाहता हो। लेखक जब हाय में निणय लेकर लिखता है तो आगत की उत्सुकता उसके लेखन में नहा रह पाती। आज की पीढी के लोग अधिकांश बहुत कुञ्ज जानते हैं। यह तक जानते हैं कि पुरानी पीढी के कुञ्ज नहीं जानते थ।

■ आप उनके इस कथन से वहाँ तक सहमत हो पाते हैं ?

—बात ता सच है। बेगन आग्र घेरे क मुकाबले वाप बहुत ही कम जानना है। लेकिन यह बहुत और अतिम और निर्णोत नान रखने की क्षमता कहानी-लेखन की क्षमता नहीं बनता। यह विद्रोह आदि के मामले में ब्यादा काम की साविन हा सकता है जहाँ सघप बना जीना और जीतना पढता है। कहानी के लिए तो महानुभूति की अधिक अपेक्षा है। वह अपन की कम मान मकन की सपारी में स सृष्ट होती है। पर क्या किया जाय, जाननार मुक्क अपन की अज्ञ

कस मानें ?

॥ आपनी बाता से लगता है कि पुरानी नयी पीढी में कसाव-तनाव की स्थिति है ?

—वह ता है ।

॥ ता क्या यह स्थिति साहित्य के लिए श्रेयस्कर भी है ?

—श्रेयस्कर न हा लेकिन फल आने से पहले वृक्ष यदि नहीं भुज पाता तो दोष उसे कैसे दिया जाये ? विद्रोह की अवस्था हर जीवन में आती है । उस अवस्था में यकिन अपने को अपरिपक्व मान ही नहीं सकता । उचित यही है कि उन अपरिपक्व न कहा जाय । असम्मान में से विनय या नम्रता को नहीं उपजाया जा सकता । आगे पाछे तो स्वभाव में वह आजब आयेगा ही । किन्तु जब 'एडोलोसेंस (प्रल्हडपन) की यह अवस्था हा तब सामने न पटना ही इष्ट है । बल्कि ऐसी अवस्था में कुछ और प्रशंसा देते रहना भी हितकर हो सकता है ।

॥ वह किम दृष्टि से ?

—दृष्टि यह कि वह उसमें कही दबा हुआ है । वह अपने को आजाद और सबसेसमय समझता चाहता है । यह योगी तृष्णा है । यदावा देने से वह दमित भाव दूर हो सरता है और वह अपने प्रकाशन का माग पाकर स्वास्थ्य का लाभ कर सकता है ।

॥ आपने नया पीढी पर अपरिपक्वता का आरोप लगाया है । इसके विपरीत नया पीढी का आरोप है कि पुरानी पीढी में अधिकांश लोग अति पक्व यानी आवर राइप हा गये हैं । इस सम्बन्ध में आप क्या कहेंगे ?

—आपु से शाय एव समय जरा आतो हा है और फिर मृत्यु आ जाती है । यह क्रम तो स्वतः सिद्ध है । अपना ओर से जिमी का धक्का देकर जरा बीर मृत्यु में धकलन का भाव-यचना अनुभव हानी है ता यह कुछ अपनी ही अमहिष्णुता का कारण । राज परम्परा में अवसर देना गया है कि बेग चाप के मरन तक ठहरा नहा है उससे पहले ही उसने आग आकर चाप के तिर को काट डाला है । कारण इसमें राजसिंहासन बना करता है । ऐसा कोई सिंहासन

साहित्यकार के पास नहीं है। पर श्रुतान पत्रों से काम बरत आन वाला के लोके कोद-न-कोड आसन ता बन ही जाता है। अस्तित्व क युद्ध में क उब र्भ, क्यों सहा जाय ? जीवन-मघप का यह भी एक पक्षू है। पर, मघप उय र्भना भी कि इसमें साहित्य अथवा ममृति का का मम्भर नही है। दकि मुन उता कि जरा-भीणता की आर बरन जान बाव व्यक्ति का अतिरिक्त सम्मान दना कुछ कठिन नहीं जाना चाहिए। सब पूछिय ता य आर-भान ग उत विग्राम की आर नरता है। अपमान ता उल्टे जीवनपर्या तत्व है। निरम्बार का भाव देगे तो पुरानी पीठी म जीन और अपनी मत्ता रखन का भाव उतगता। नयी पीठा को यह अनुभव नहीं है और इमीनिए पुरानी पीठी को उलटे जमाय और जगाय रखन का काम उमन हा रहा है।

✽ फिर ता र्भ ममभना हूँ नया पाठा की यह अनुभवहीनता और दोना पीडिया क बीच तनाव का स्थिति उत्पादक ही है।

—मघप और तनाव कायम रखा जाता है ता हमम आत्मी का किनना भी नुकसान जाना हा साहित्य का भला ही हाता है।

✽ आत्मा का नुकसान भी बहरान नुकसान है। और आपक हिमाव स ता अतन व्यक्ति ही महत्वपूर्ण है तो क्या इस तनाव की स्थिति का बाई निराकरण नहीं है ?

—तनाव का स्थिति का निराकरण चाहा ही क्या जाता है ? उमने कष्ट होता है उसन गम्भीर प्रेरणा र्भती है मनो म विचार आता है वह सत्र तो है। लकिन दूमरी आर उत्साह भी जागता है कम म प्रपरता आती है जीवन म बग बरना है।

✽ तनाव म अवश्य ही दो प त हाने हैं। क्या यह इष्ट है कि एक पण दूमरे के मुताबल भुक् या मन् पड जाय ? जिमका भुक्ना (मवमिगन) कर्त हैं उगम लगता तो है कि तनाव मिट गया लकिन उम पद्धति से जीवन म क्षति आना है। इमलिए निराकरण का माग भुक् जाना नहा है। बलिन तनाव स्वय मे हान ममाधान का आर बडना है। विक्रम की इस इन्द्रात्मक प्रक्रिया का भावम न अर्च्छा निरूपण किया है। योमिस एण्टी योमिस का जमाता

उसमें आपका मन उसके भविष्य के प्रति आश्वस्त होता है या नहीं ?

—नई कहानी वहीं न जा पत्र पत्रिकाओं के नये अंक में छपी देयी जाती है तो क्या यह कहानी एक ढग की है ? अखबार बहुत स हैं और रोज रोज सबके नये अंक आ रहे हैं । बटुनायत और बहाक में ठीक बीन नमूना नई कहानी का है यह मैं जानता नहीं हूँ । लिखने वाले के साथ कहानी का रूप जुड़ा है और सभी तरह के लिखने वाले हैं । हल्के हैं भारी हैं घोंटी वाले हैं टार्ड वाले हैं । एक साथ में देखना मुझमें हो नहीं पाता है ।

नया गद्य सदा फलन का है । फलन का भविष्य नहीं होता, केवल वर्तमान होता है ।

॥ आपन हिन्दी क्या माहित्य में वर्षों का प्रवाह देखा है । क्या वर्तमान की कृतियाँ विगत की तुलना में आपको अधिक सामर्थ्य वाली लगती हैं ?

—नहीं । न कम न अधिक । सामर्थ्य समय में नही यत्नित्व में से आता है । नया १९६१ का साल गत वर्षों से समर्थ हो तो असमर्थों के लिए बन हुए यात्रालय भाजनालय और औपचारिक सब सतम हो जाय और लोग कुछ न करें सिर्फ समय का आसरा देखा करें !

सामर्थ्य श्रद्धा में से आता है । श्रद्धा का जमाना यह नहीं समझा जाता इसलिए सामर्थ्य का भी जमाना शायद यन्हीं है । कुछ विंगरा बिलर है । मानस का गठाय और जुटाव उतना उपयोगी नहीं समझा जाता जितना विंगराव सामर्थ्य में उल्टी चीज है विंगर में से विंगरा दी गई यह रगीनी और पुक्ता-चीनी । कहानियाँ में ऐसा मसारा मैं आन देखा देगना हूँ ।

॥ हिन्दी की नई कहानी में प्रयोग का तो एक श्रम या नये ढग से बात कहने का जो प्रयत्न दृष्टिगत है क्या आपका नया पीछे के फलन फूलन का मनोप दे पाता है ?

—प्रयोग या प्रयत्न मेरी समझ में नहीं आता । हर सृष्टि प्रयोग है । हर नई कहानी प्रयोग में स आती है । क्या पहल क्या अर्थ । यह प्रयोगशीलता अभित है जीवन में और पुरुषार्थ का नाम है । लेकिन प्रयत्नपूर्वक हान वाला प्रयोग जीवनमय नहीं होगा है । इसलिए रूप गिन के साथ ही अधिकांग हूमा करता है जो ध्यपता है ।

४ काली के द्वारे में आपका निजी मत क्या है ? आप कौन सी दिशा को नये लेखक के लिए श्रेयस्कर मानेंगे ?

—निजी मत कुछ नहीं है। कारण, मैं कहानी-लेखक रहा हूँ अब भी हो सकता हूँ। मत अ लेखक के लिए जरूरी होता है।

दिशा मुझे वह चाहिए जो किसी भी दूसरी दिशा में अलग या उलटी जाने की मजबूरी से बची रहे। दिशाएँ सब स्पष्ट में चलती हैं। मैं टाइम की दिशा पसंद करूँगा जो स्पष्ट की किसी दिशा को नहीं काटती और सबका भरपूर बनानो है। टाइम की दिशा को आत्मिक कहना चाहिए। आर्जेंटिक में स्वतंत्र सज्जिकत्व।



४ अपने का आज का कहानीकार मानने के नाते, वर्तमान यत्रणामय परिस्थितियाँ—वास तोर से राजनीतिक और आर्थिक भाषण की यत्रणामय परिस्थितियों के प्रति कहानी लेखन के स्तर पर सन्ध्या पात हैं या इन स्थितियाँ के माध्य अपने का सिर्फ सन्ध्या ही पाने हैं और कहानी-लेखन के समय इन्हें ग्रहण कर सकने अथवा ग्रहण करने के बावजूद व्यक्त कर सकने में असमर्थता महसूस करते हैं ?

—परिस्थिति की क्या अलग सत्ता है ? मन स्थिति के साथ उसकी सम्बद्धता के स्वरूप पर मैं सत्य निभर मानता हूँ। लेखक परिस्थिति व्यक्त नहीं करता उनकी अपेक्षा में अपने का व्यक्त करता है। वह अपनी ओर में निम्न खाजना और मुझाला है। अपने द्वारे में मैं अनजान हूँ।

४ आप मानते हैं कि परिस्थिति और मन स्थिति परस्पर सम्बद्ध होनी हैं। इस हम भी मानते हैं, किन्तु आपने यह स्पष्ट नहीं किया कि परिस्थिति का अपना अंतर से निदान आपकी रचनाओं में कहाँ पर या कहाँ तक खोजा या सुझाया गया है ?

—हाँ यह स्पष्ट नहीं है। शायद मुझमें अधिक स्पष्ट हो भी नहीं सकता। मन स्थिति के भी माध्य हूँ तद्गत हूँ, इससे उसका तटस्थ पाता होने का मेरा क्या नहीं है।

परिस्थिति का ज्यो का तथा स्वीकरण या समर्थन लेखक में नहीं हो

—म काल की दूतनी के निणय को अपनी मुठठी म नयी लेना चाहता । अपनी हचि न म आदर हूँ और विवाह हूँ । क्या पता कि यह इतिहास की प्रतिनिधि हचि हो ही नही । अधिक स अधिक म इतना ही कह सकता हूँ कि मुझे श्रमुक कहाना या पुस्तक अच्छी लगी लेकिन उस निणय को कालक्रम पर थाप ता म नही सकता ।

॥ फिर ना !

—जम शमा निमल वर्मा की एक कहानी पडी थी और उसका असर गहरा हुआ ।

॥ सारिसा मे प्रकाशित कहानी स आशय है ।

—हाँ पर काज दना का निणय उसके पक्ष म होगा कि नहा कौन जान ! इमोलिए जब तक कभी मने निणय का काम अपने तर नहीं मान लिया है । विद्वान पति यह काम करते आए ह और अपन व्यवसाय का वे ही अधिक अच्छी तरह जान सकते हैं ।

॥ शमा करें, वहीँ एसा ता नही कि प्रश्ना के सही उत्तरा म आप इस्तेप करना चाहत हैं ?

—इम्प करन स मुझे भय हो एमी बात नही ।

॥ परिवर्तन की दृष्टि स पूछा उन साठ क पहले की और मन् माठ के वाक की कहानी म क्या आपका कोई विषय अन्तर नजर आता है ?

—बौद्धिक मात्रा निरन्तर बड रही दीखती है । व्यक्ति म स्वयम्भूतता के भाव मन्रे हात जान का यह प्रमाण है । अथवा सभ्यता की दृष्टता का प्रमाण ।

॥ नामवर्तिसह क इस कथन के बार म आपका क्या विचार है कि हिन्दी-कहाना म १९५६ ६० के आम-भास कहानीकारा की जा नई पीडी उमर कर सामने आई है वह अपनी गुरुमान का नाना निमल वर्मा की 'एक गुह्यगत' स जाहना पयाद करती है । रावेण यादव कमलेश्वर द्वारा विनाशित नई कहाना क विच्छ इस पीडी के मन मे कितना अधिक विद्राह है, यह इमी से स्पष्ट है कि इन्हाने कहानी मात्र को अस्वीकार करक हिन्दी म अ कहानी की आवाज उठा दी ।

—बहुत बुद्ध से सहमत हूँ । पर सही जवाब उसी पीढी से लेना चाहिए ।

✻ सही जवाब तो वस्तुतः आपसे मिलना चाहिए, जो कि पहले की पीढी के हैं । और केवल है ही नहीं बल्कि उस पीढी के प्रतिनिधियों यानी विशिष्ट व्यक्तियों में से भी हैं ।

—मेरी बठिनाई—जनेन्द्र ने इस बार फिर सीधे घागे में गाँठें बाँधना चाही—भई यह है कि व्यक्तित्व को मैं पीढी में देख ही नहीं पाता, केवल व्यक्ति में देख सकता हूँ । इसलिए कहना पड़ता है कि पीढी के बारे में सही जानकारी अगर चाहिए तो उस पीढी से ही लेनी चाहिए । मुझे डर अवश्य है कि आप पीढी से लेने चलेंगे तो जवाब इतने विविध हो जायेंगे कि कौन सा उनमें पीढी का है यही तय करना मुश्किल होगा । इसलिए मेरी सलाह तो आप को भी यह है कि पीढी के चक्कर से बचिये और व्यक्तियों की रचनाओं को व्यक्तिगत लीजिये ।

✻ अभी आपने जानकारी का प्रयोग किया है कि तु यदि मूल प्रश्न को देखें तो उसमें आपसे जानकारी नहीं 'विचार माँग गया था ।'

—विचार पहले ही इस बात पर घटकता है कि पाढ़ी का कोई वस्तुगत अस्तित्व भी है । असल में वह सना धारणात्मक है । धारणा के बाहर वस्तुत्व का अर्थ में उसका अस्तित्व ही नहीं है । इसलिए उसके बारे में विचार बनाने भी सभूँ तो किस आधार पर ? संक्षेप में पीढी के बारे में मेरे पास कोई आशय-विचार नहीं । बहुत सुनता हूँ (साहित्य नहीं चरित्र के क्षेत्र में) कि पीढी बिगड़ रहा है । मुझे बसा बुद्ध भी नहीं दीखता और ऐसे कथन उन लोगों के मुँह में ही गोभा या सायकता पा सकते हैं जो समझना नहीं सिक्क बलाते रहना चाहते हैं । विचार का सम्बन्ध समझने से अधिक है बनाने से कम और इसलिए देना है कि समझने की चेष्टा में पीढी जैसे समुदाय वाचक का अर्थ अर्थ इयत्ता की रखाएँ तो बठन हैं और अवास्तव हो जाते हैं । विचार को उन पर रखने की फिर आवश्यकता क्या नहीं रहनी ।

✻ क्या इस्वेप-मध्यम अपने प्रश्न को अर्थ में ला सकता है ?

—आप स्वतंत्र हैं पर 'इस्वेप' से मुझे भय हो ऐसी बात नहीं । मरणातिवितार

सींग बढ़ाय सामने आ जाए ता क्या आप समझत हैं मैं बचने और भागने में देर लगाऊंगा ? जी नहीं इतना नासमझ मैं नहीं हूँ । इसलिए पनायत की आवश्यकता को मैं मान लेता हूँ ।



॥ नई कहानियाँ आन्दोलन को आप किस सदम में लेते हैं ?

—मुझे उसमें साहित्यिक सदम तो मिल नहीं पाता । अर्थात् उस स्तर पर मुझे उस आन्दोलन को फालतू मानना होता है । सदम कुछ यदि मिल पाता है तो आदिम प्रेरणाओं में । उनको जीवनपरक या एक्जिस्टेंशियल प्रेरणाएँ कहिये । वे प्रेरणाएँ जीवन का कम आवश्यक भाग नहीं हैं । लेकिन उनमें विग्रह फलित होना है और वह अपनी बातचीत के क्षेत्र से बाहर की बात होनी चाहिए ।

॥ नये परिवर्तन तो उस साहित्य में निरन्तर आते ही रहते हैं फिर उन्हें स्वीकार करने में अड़ने क्या है ?

—परिवर्तन को अस्वीकार करने की भूल कौन करेगा ? पर, पानी बह नहीं है क्षण-क्षण बढ़त रहा है, तो क्या गया भी मिट रही है ? साहित्य की रूपाकार में ही बँधा देखेंगे तो उसकी अमरता नष्ट हो जाएगी ।

॥ व्यक्ति पल पल बदलता है जो अभी था अभी नहीं है । कला में भी परिवर्तन अन्वयभावी है । उसी तरह यदि साहित्य की विधा भी बदले तो इसमें अस्वीकार क्या ? प्रेमचन्द खत्रीजी की तिलिस्मी कहानियाँ से उभर कर एक नये यथाथवाणी धरानल पर आये, वैसे ही उससे अगले परिवर्तन जैनद्र धनेय आदि द्वारा हुए । उसी तरह अब जो नये परिवर्तन आते जो अन्वयभावी हैं, उनको अस्वीकार करना क्या यथाथ का अस्वीकार करना नहीं है ?

—जैनद्र का मैं जानता हूँ । उसने कोई परिवर्तन नहीं किया । हमें बस वह कहानी लिखी जा लिये सजना था । यानी अपनी कहानी लिखी । परिवर्तन करने के लिए नहीं अपने को साधन के लिए । गृहस्थी का कहानियाँ प्रेमचन्द के बाद आगे भी लिखी गई और लिखी जायेंगी । वे पढ़ी भी जायेंगी । कहानी लिखने वाले के साथ ही, समय के साथ उतनी नहीं है । समय से लगे भाषा हो

सबनी है गैली हा सबती है या इस तरह की और ऊपरी बात हा सजता हैं । उनका सकर आदोलन और विनापन होने रह है खडे भी किये जा सकते हैं । पर साहित्य की आरमा मे उनका कोई वास्ता नही हाना । परिवतन खून हों, फँगन चाहे पल पल बदलें तो कुछ भी बुरी बात गही है । पर तिमक लिए वे वस्त्र होते हैं न वह मनुष्य का शरीर ऐस जल्दी बज्जता हे न स्वभाव फिर आत्मा की बात ता कहिये क्या ।

✽ एस न भी बज्जल लकिन यह ता मानना हा होगा कि वह सब परिवतन ढील है । जहा तत्र प्रश्न है विज्ञापन का या विनापन की मनाउत्ति का वह बुरा कहा जासजता है लकिन केवल उसी वृत्ति क लिए सम्पूर्ण साहित्यिक धारा परिवतन को नकारा जाय, औरउठी पुरानीलकीरा पर चता जाय, ता क्या वह विवारा है ? आपने अभी कहा जा साहित्य कहानी लिमन वाल के साथ है समय के साथ नही है क्या समय, निमन वाला कहानी य सब रिलेडेड नही हैं ? एक धोनी मो कमजोरी के लिए सम्पूण अस्तित्व को अस्वीकार करना प्रगतिगीलता नही मानी जा सकती ।

—नय-पुरान शब्दों का बीच म डालकर मानो बात क मानत्य का एम भाना और सज्ना नही चाहते हैं । इम प्रकार मागतन और गत्य स अपन को बचित करना विसा के हित म नही हो सज्ता । पुराने क विरोध म क्रिमी नये का सडा करके दमन की पद्धति सज्ना आत्मगमथनात्मन हाता है और हान भाव म से आना है ।

लिखने वाला मर जाता है उमका लिखो फिर भा जित्ना रहना है तो क्या ? जब इसी कारण कि परिवतनीय म जितना उम लिमने और गीने वाल म अपरिवतनीय का न्बाग रहा उनना नी चिरनन अमर बनकर यहाँ गप रह गया परिवतनीय तो उमन कनेवर क साथ मर सप गया । सचमुच क्या आप उम कलवर का पण्डर हा साहित्य क मूल्यो का पहचान करता चाहत हैं ?

✽ साहित्य के मूल्यो की परम यथाय स नीती है । यह कने स्वाकार किया जा सकना है वि नया साहित्य माता और सत्य स बचित है ? जितना गज्जार्द और निज्जता स जीयन एव गज्जु की गमस्याआ को देपन का प्रयत्न अय तिया

जा रहा है उतना शायद पहले कभी भी हिन्दी साहित्य में नहीं किया गया। नये पुराने के भेद को बँधत रहेंगे, लेकिन साहित्य आगे नहीं बढ़ता और सब कुछ यह प्रचारात्मक ही है यह कैसे हो सकता है ?

यथाथ क्या है मैं अब तक जान नहीं पाया।

प्रयत्न सच्चा होगा वहाँ दावा नहीं हागा। दावा है, इसी से सशय होना चाहिए कि क्या प्रयत्न भी है ? और क्या वह सच्चा है ?

नये पुराने के भेद पड़ेंगे, डाले जायेंगे, उठेंगे उठाये जायेंगे। पूरा जो उसमें रहेगा और भूलेगा, वह खोयगा ही, पायेगा कुछ नहीं।

आज मेरी उम्र अट्ठावन है कभी अट्ठाइस भी रही होगी। आलोचकों की और आपकी बात मानू तो शायद मुझमें कुछ वैसा प्रयत्न रहा हो, पर उस जमाने में भी, किसी नयेपन के दावे की बात मुझे सूझी तक हो ऐसा याद नहीं पड़ता। क्या बिना हो-टुल्ले क निर्माण हो नहीं सकता ?

शोरगुल की प्रवृत्ति स्वस्थ न हो, लेकिन इससे वास्तविकता में क्या अंतर पड़ता है ? गंगा बहती है और प्रतिपन्न बहती रहती है यदि हम उस न देखें या न स्वाकार और या उसमें तटस्थ बने रहें तो वस्तुतः कोई विशेष अंतर नहीं आता है। शोरगुल की प्रवृत्ति शायद समय की देन हो, क्योंकि यह हिन्दी तक ही सीमित न रहकर विश्व के सभी साहित्य में विद्यमान है। अल्मेयर कामू साथ हैमिग्वे विलियम फाक्नेर यदि मूख ही हाते तो विश्व के साहित्यकारों की धेम्मी में नहीं पहुँचते और दुनिया का सब भाषाभाषी उनका रूपांतर नहीं होता और करोड़ों पाठक उन्हें नहीं पढ़ते।

—मुझे नहीं मालूम कि आपके गिनाय नाम के लोगो न दूसरों को नितान्त जीव और मूस बताने की वागिदारी की थी। यदि वे मान्य हुए और रहने तो निश्चय ही इस कारण कि उन्होंने अपने प्रति ईमानदारी अवश्य अपनाई होगी, लेकिन पूज्यता के प्रति उद्दृष्टता नहीं।

अन्तर जो उस तरह बाता से पड़ता है वह यह है कि समझा जाने लगता है कि वापबेटे की प्रीठ किशोर की जननि नहा चाहता है। याद कीजिये कि माता-पिता जिस वृत्ताथ भाव से पुत्र का प्राप्त करत और उसका पोषण करते हैं। लेकिन

राजनीति में आधारता की परम्परा रही है कि युवराज राजा का खतम करके पहले गद्दी छीन लेना चाहता है। गद्दी के कारण बात समझ में आती है और आज के कानून ने सचमुच साहित्य को सम्पत्ति बना दिया है। इसलिए उस में भीक्षेत्र इस तरह की बात बढी आये तो कोई विस्मय की बात नहीं है। लेकिन साहित्य चिन्तना उस अनिवायता से डिगे तो सचमुच शोचनीय बात होगी।

✻ नई कहानी के नाम पर हिंदी में जितना कुछ लिखा जा रहा है, क्या आपको सब वैसा ही भावपूर्ण और उथला नजर आता है? और उसमें कहीं भी सार और टिकाऊपन नहीं नजर आता?

—हाँ नई कहानी के सम्बन्ध में और उस पर जो लिखा जा रहा है अधि-काश तो मुझे अथहोन और अनभीष्ट प्रतीत हुआ है। कहानियाँ सचमुच ऐसी अनेक सामने आई हैं जिन्हें पढ़कर चित्त को आनन्द प्राप्त हुआ है। नयेपन के शोर में अक्सर देखा है कि अच्छा अनपूछा रह जाता है और बनावटी उभार में ल आया जाता है। इस चर्चा से सबसे बड़ी हानि यह हो रही है कि लखन हार रहा है गुटबन्दी जीत रही है।

✻ लेकिन लोग तो यह दावा करते हैं कि उन्होंने सचमुच साहित्य की नौका दलदल से निकाल कर पार लगा ली है। यदि ऐसा न होता तो वे कैसे इतना विकते छपते और धाड़े ही समय में इतना यश अर्जित कर लते?

—दावा व भरते हैं क्योंकि उनमें इसकी स्पर्धा है इतना गुमान है। इस शमना के लिए उनके प्रति सराहना का भाव हो सकता है। बाज़िर इतनी हिम्मत हर किसी में कहीं ही पाती है? आर हाया हाय इसका इनाम भी मिलता है कि नाम की चर्चा होती है और किताबों की बिक्री होती है। लेकिन इस सबके बावजूद उनमें प्रति सबसे बढ़कर मुझमें सटानुभूति का उदय होता है। क्योंकि यह निश्चित है कि अहंकार अथवा आपह में से नहीं बल्कि उसके अपण में से श्रेष्ठता की सृष्टि होगी। बाज़ार में ऊँच नाच पर उपादे न जाइये, पाल निरवधि है और घरती भी विपुला है हम आप से सीमित नहीं है। और वहाँ महम् नहीं टिकेगा, प्रेम ही टिक पाइगा।

हिन्दी-कहानी : शील-निरूपण

॥ अभी 'धर्मयुग' में आपका जो लेख आया है उसमें कुछ इस प्रकार की ध्वनि निकलती है, जैसे आपका लेखन विनोद उपन्यास और कहानी की विधा को अपनाता कुछ अपने आप हुआ है। लेकिन, मैं समझता हूँ कि उपन्यास और कहानी को अपनी विधा के रूप में अपनाने के पाछे कोई वैचारिक पृष्ठभूमि ज़रूर रही होगी। यूँ उपन्यास और कहानी विनोद रूप में आधुनिक पश्चिमी सभ्यता की विधाएँ हैं। अपने बारे में फसला करते वक़्त क्या पश्चिम की किसी खास विचारधारा के लेखक या किसी खास पीढ़ी के लेखक आपके सामने थे ?

—मैं निणय में से तो लेखक बना नहीं। यह घटनात्मक तथ्य है। मैं अपने सम्बन्ध में इतनी स्वस्थ अवस्था में ही न था। ऐसी हीन भावना में दबा था कि निणय वहाँ से नहीं बन सकता था। कहानी और उपन्यास लेखक बनने का निणय तो और भी बड़ा का न था। मैं समझता हूँ कि हर आदमी के साथ

॥ क्षमा करेंगे मेरे प्रश्न का सम्बन्ध बनने से नहीं करने से है। इसलिए मैंने किसी न किसी स्तर पर निणय की बात कही थी।

—मैं जो कहना जा रहा था, आपका प्रश्न उससे सम्बद्ध ही होगा। हर आदमी दो चीज़ों के बीच से चलता है और वे दोनों सामान्यतया मेल नहीं खाती। एक तो, जो सपना-सा लगना है, जिसके प्रति आकांक्षा होती है। दूसरे वह जो अपने साथ यथार्थ और वास्तव होता है। इन दोनों के बीच काफी फासला है और प्रत्येक व्यक्ति चुनौती अनुभव करता है कि कस इन दोनों फासला के बीच में रिकतता न रहे बल्कि एक सम्बद्धता हो। तो इस प्रयत्न में, मैं मानता हूँ कि कहानी उपन्यास आदि की सृष्टि सहज और अनिवार्य हो भाएगी। पश्चिमी साहित्य पढ़ता मैं ज़रूर रहा हूँ, लेकिन किसी लेखक या ग्रन्थ रचना के कारण

मे कहानी पर आया ऐसा मुझे याद नहीं आता। गुरु म जो कहानियाँ लिखी गई थीं मर उस समय के जीवन से जुड़ी सी देखी जा सकती है। उनकी प्रेरणा अमुक लेखक या अमुक रचना से नहीं आई होगी क्योंकि वह बिलकुल जुड़ी हुई थी मरे तात्कालिक जीवन से। निमित्त कुछ बन गया हो वह बात जुदा है।

★ जहाँ तक आपके कहानीकार के आपका निजी जिन्दगी से जुड़े होने की बात है वे आसामाए और यथाव वीन से थ जिन्ह जोड़ने की चुनौती आपके सामने आई ?

—भरे साथ घटना ही हुई कि मुझे नौकरी मिला। यह दूसरी बात है कि मिलते ही वह नौकरी गलम भी हो गई। ता भरे मनुम उचल पुचल हुई। मीने उसी आप-थोता पर कुछ लिखा और वही द दिया। फिर दूसरी रचना की बात। आरुधामन मिला था कि वह छपेगी। पाँच महीना तक नहीं छपा तो मैं दपनर पढ़ा। मालिक न कहा कि वह अभी डाक से वापस आई है सम्पादक बाहर गये थ उतान ठीक करके भेजी है। देखी तो वह बहुत गुद्व हा गई थी। इतनी गुद्व कि वह भरी रचना ही नहीं रही। अर वह रचना मैं कग छपने दू ? क्याकि उमरा सउ इतना दुरमन था कि मैं ता बसा न था। कहने लगे कि नहीं रचना हमारी हो गई है अगर आप ल चयें तो इस गत पर कि कत तीमरे पहर तक एउद की दूसरी कहानी दे जाएँगे। खर मैं वादा कर आया। म जहाँ रता था वहाँ सामन उजाग ऊउठ खाउड जगह पडो थी वही मटाना डाल मैं सोया करता था। कन कनानी दने की किन्न और मैं ऊपर तारे दग रहा था। लगा कि एक एक तारा बहुत बडा है और बहुत दूर और मैं कुछ नहा हूँ और मैं तारा नहीं हो सकता। इसी लडो म एउ मूत्र मउ म आनर टकराया कि यदि मैं अपनी चान का तार न बिठा दूँ तो कुछ हाथ नहीं आयेगा। अर्थात आप्रही आरुधामन क्या है। मटुवामा ता स अगर चरें और दानर म कही एक आदग का प्रतिष्ठित करलें तो अत यथताम होगा पूणता हाथनती लग सकती। यम ऐसा एक मूत्र सा था उस समय मन म घटनात्मक कुछ नहीं था। इस

सूत्र का मूत करने के लिए अनायास दो चरित्र अवतार पा उठे । बस, उन दो प्रतीक पात्रों की बन अनवन से स्पष्टी' कहानी बनती चली गई । तो अधिकांश रचनाएँ अमूल सिद्धांत को अपने निकट मूत करने की प्रेरणा स बनी ह । मरी अधिकांश रचनाएँ सोचता हूँ कि साठ प्रतिशत ऐसी ही होगी ।

॥ तो क्या मोटे तौर पर आप इस विचारधारा से सहमत ह कि साहित्य का मुख्य उद्देश्य किसी सिद्धांत का निरूपण करना होता है ?

—नहा, म सोचता हू कि निरूपण करने के माना हाने कि सिद्धांत प्राप्त है और आप म बंद है । लेकिन हाँ, सिद्धांत यदि आपकी अभीप्सा और राज का विषय हो तो आप उसका प्रयोग और परख म ला सकते हे अपने निकट मूत करने के लिए । अपने तइ उसको घटनात्मक स्तर पर उतार कर देखना चाहते हैं कि सिद्धान्त सहा ढलता है या नहीं । इसम निरूपण नहीं होगा । साहित्य सिद्धांत को परखने का ढग अवश्य हो सनता है ।

॥ क्या इससे यह नतीजा निवाला जा सकता है कि यह प्रक्रिया दुनिया के हर व्यक्ति के लिए अलग-अलग होगी ?

—निकालना चाह तो निकाल, लेकिन मैं साचता हूँ कि अगर मरे लिए प्रक्रिया यह सगत है, तो दूसर के लिए भी सगत हानी चाहिए । मानव य त्र के रूप म क्या म कोई औरा से अलग ह ?

॥ अब हम यह मान लेते है कि साहित्य के सदाभ म कोई प्राप्त सिद्धांत नहीं है जिनका निरूपित करना है बल्कि घटना स सिद्धांत का तरफ जाने और फिर उस सिद्धांत को परखने का प्रक्रिया को अमाने है तो निश्चय ही यह प्रक्रिया हर व्यक्ति के लिए अलग हो जाती है । हर व्यक्ति का यह रास्ता अपने आप तय करना होगा ?

—मुझे श्मम कोई आपत्ति नहीं है । बसे म व्यक्ति के रूप म यह नहीं मान पाता कि दूसरा से सबथा अनमिल हू और जो यात्रिक घन प्रक्रिया मुझम चलती है वह दूसरा म नहीं होगी ।

॥ मरे गवाल का मतलब है कि मरे किसी आधार का लक्षण यानी जो मैने प्राप्त विधा है उसको आधार बनाकर दूसरा आत्मी रास्ता नहीं बना सनता ?

—मेरा स्वप्न केवल मेरा ही है दूसरे का नहीं। इसी तरह माग भी किन्हीं दो का एक नहीं हो सकता। कारण हर दो में स्थिति भेद है। लेकिन प्रत्येक व्यक्ति अपने आकांक्ष्य और अपने ही यथाय के अन्तर की चुनौती से बच कसे सकता है मैं जानता नहीं। इसलिए मैं तो यही कहता हूँ कि प्रत्येक व्यक्ति अपने घटित और आकांक्षित— इन दोनों तटों को छूना हुआ चलता है।

उसकी परिभाषा दू कि जहाँ में चुनौती है ? नहीं वह न होगा। परिभाषा दी जा सके तो चुनौती खत्म हो जाती है। चुनौती जात में से नहीं आती, हमें आता अन्त अन्त में से आती है। जो घटित है वह यथाय का चित्र है। जहाँ से चुनौती आती है आती रहेगी कभी खत्म नहीं होगी वह उस भाषा में अन्त यथाय है—नितांत और नित्य अन्तयथाय ! उस सबका अवास्तव का नाम मरे निकट भगवान है। सत् कुछ हो तो वही हो सकता है। उसे अस्त तक कहना चाहो तो कहो। बहुतेरे कहते ही हैं। पर अन्तिम और परम चुनौती का वह ऐसा स्रोत है कि कभी समाप्त होने वाला नहीं है। इसलिए मैं जो भी परिभाषा दूँ वह अन्त में ईश्वर में सोने के लिए होगी।

■ इससे अगली बात क्या यह कही जा सकती है कि आपकी राय में घटना का और आकांक्षाओं की चुनौती का भी कोई सामूहिक रूप नहीं होता ?

—बात वहीं भारी तो नहीं हो रही ? मैं समझता हूँ क्षण समय का अन्त है। क्षण न हो तो समय समाप्त हो जाता है। यद्यपि क्षण स्वयं को समय में समाप्त करके साधक बनता है। यही बात व्यक्ति और समूह समाज या देश की सबद्धता के बारे में सही मानना चाहिए। अर्थात् व्यक्ति घटक है, इसी से समूह समाज है। व्यक्तित्व के नाश में सामाजिकता फलित नहीं हो सकता। इस तरह अन्त और समय दोनों जहाँ परस्पर में सुरक्षित रहते और परस्पर को सुरक्षित रखते हैं वही सफल साहित्य है। समाज प्रधान बनता है और व्यक्ति अस्वीकृत होता है अगर ऐसा कोई साहित्य है तो वह सफल नहीं है। और व्यक्ति का अहम् इतना प्रजिप्त है जहाँ कि दोष अनाहत हो जाता हो तो वह भी साहित्य अभ्युपनीय नहीं है।

॥ आपने अभी जो कहा, यह क्या किसी हद तक चुनौती की परिभाषा नहीं है ?

—अगर है, तो हागी ।

॥ दानो बात की अगर मान लेते हैं, तो पहली बात अचूरी हो जाती है ।

—अचूरी तो होगी ही । और जब तक तीसरी बात निकलने वाली हो तो दूसरी बात अचूरी हो जायगी ।

॥ एक छोटा-सा निजी प्रश्न पूछना चाहता हूँ । कई लोग ने कहा है कि आप का लेखन हिन्दी के क्या साहित्य में एक नई दिशा में किया गया प्रयास था । क्या आपने खुद भी यह अनुभव किया कि जा दिशा उस समय थी, हिन्दी के क्या साहित्य में उससे आप कुछ भिन्न दिशा में जा रहे हैं ?

—नहीं, बिल्कुल अनुभव नहीं किया ।

॥ अभी पश्चिम में एक प्रवृत्ति ऐसी है जहाँ यह मान लिया गया है कि जिसे अभी आपने चुनौती कहा है उस चुनौती का कोई उत्तर दिया नहीं जा सकता । इसलिए भविष्य की कोई कल्पना नहीं कर सकता ।

—फिर भी कल्पना भविष्य की ओर चलने का वाध्य है । निरथक मात्र लो, लेकिन कल्पना बेचारी जाय और किधर ? वतमान के प्रति हमारा सम्बन्ध बुद्धि का है । उधर कल्पना जाय तो कसे ? क्या अपनी पीठ की तरफ जाया जा सकता है ? अर्थात् चुनौती का उत्तर चाहे न बने पर प्रेरणा वही में बनती है । समय का प्राप्त पहलू क्षण ही है अर्थात् क्षण के साथ वही 'याय कर सकता है जा समय के प्रति जीता है । क्षण में जीना समय की धारा से विच्छिन्न होना है । जो समय की सनातनता के साथ तत्सम होता है वही क्षण के साथ 'याय कर पाता है ।

समय से तत्सम होने की तरकीब समय के प्रति निश्चक होकर चलना है । अर्थात् समय के प्रति उद्यन और निरपन्न । आज युग घम क्या है, यह प्रश्न पैदा करके हम समय से युग का विच्छिन्न करते हैं । इसलिए जान्नी अपनी चेतना से अक्षिप्त तत्सम हाकर घने तो उसमें ही समय के साथ की अभिन्नता ध्या जायेगी ।

॥ लेकिन आधी यह बात तो आपको उस चुनौती के आधार को ही नष्ट कर देगी ।

—मेरा बुद्ध पहले कहा हुआ वसम नष्ट हो जाता है तो उसकी आप चिन्ता मत कीजिये । यह मुझ पर छोड़िये । मैं आगे चल रहा हूँ ता अनिवाय अपनी भूमिका को बतलत हुए भी चलता हूँ । इसलिए मुझे भय नहीं है यदि मरी एक बात दूसरी बात का काटती लगनी हो ।

॥ जा निरपक्ष रहता है उसी के प्रति तत्सम हाँ का गिवायत नहीं होती ?

—सीलिए मैं कहता हूँ कि युग बोध को आत्म वाद्य से अलग समझन की आवश्यकता ही नहीं ।

॥ कठिनाई दुनिया की तरफ से नहीं है अपने अन्दर से है । स्वस्थ हाँ तो दुनिया प्रसन्नता देना सिखाई देती है और खुद अगण गण हाँ ता दुनिया से कही प्रसन्नता नो देय सक्ते ।

॥ यह कहना ठीक है पर आपके अनुसार आत्मबोध और युगबोध का क्या रिश्ता नहीं है ?

—यदि जनेन्द्र अपने लिए बतल घेरा बना लेता है ता वह नष्ट ही हागा । ध्यान रखना आगा कि बोध बुद्धि से अलग नहीं होता । चाहे फिर उस बाध का निम्नो सता व साथ गाडो — दस युग काल या बुद्ध—इमसा वह धारणा से लेने वाली बुद्धि व अनुसार होगा सीलिए समग्र व सत्सम को सदा साथ रखने की बात मैं कहता हूँ ।

॥ आपकी बात से दो नतीजे निकलते हूँ एक नतीजा ता यह निकलता है कि आज का बुद्धिवादी विपन्न पश्चिम का निरंतरता को या आत्मबोध और युगबोध व सामाजिक का उपबोध नहीं कर पा रहा । दूसरे निकलत उसकी यह है कि वह उस जगह पर पहुँच नहीं पा रहा है जहाँ उमका यह मन्मूढ हाँ कि वह समय के साथ तत्सम हाँ गया है इसलिए वह आगे बढ़ सकता है ।

—मैं समझता हूँ कि मूलगत अस्तित्व बोध दुख व बाध के सिवा दूसरा बुद्ध ही सक्ता । आपकी बात को मानता हूँ कि इस में हूँ की अनुभूति दुख और पीडा व रूप से ही मिलती है । क्याकि मैं हूँ मही यह है कि मैं सब नहीं हूँ ।

इसलिए आज के साहित्य में जो एक अकेलेपन का अहसास है, व्यथा की अनुभूति है, वह अनिश्चय है। और अशुभ नहीं है। आदमी आज नाम और शब्द वाले परमेश्वर को भूलकर बलिक तोड़कर, जो सचाई को खोजना चाहता है, सो भी अनुचित नहीं है। मगर अपना खयाल है कि समय के साथ तत्सम रह, इसकी भी अलग से चिन्ता करने की जरूरत नहीं है। बेचनी शुभ लक्षण है, इससे बुद्धि की बुरेद चेतना की गहरी पतों का उदघाटन करती और समय के साथ तत्समता लाने में सहायक होती है। अंतिम विश्लेषण में सबबोध दुःख बोध में से ही मिलेगा।

॥ बातचीत के दौरान आपने तीन स्तरों पर चेतना की बात कही है। एक कष्ट बोध की एव युग-बोध की और एक आत्म बोध की। आत्म बोध और युग बोध की चेतना परस्पर सम्बद्ध है। इस वचारिक सादम में नवलक्षण के सम्बोध में जो स्थापनाएँ हैं, नवलक्षण के प्रवृत्ताओं की उनके बारे में और विराप रूप से नई कहानी के बारे में आपकी राय क्या है ?

—शब्दों की बारीकियाँ में कही हम भटक न जाएँ। दुःख बाध से हमारा आरम्भ है। उसका बाहर की आर प्रक्षेपण होता है तो वह आत्म बोध के रूप में परिणत होता है। अर्थात् उसका फलित होना है—सह अनुभूति। जब हम दुःख के अथवा अह के बोध का सहानुभूति में परिणत नहीं करते, आग्रह पर रह जाते हैं तो उसका अच्छे-अच्छे रूपों का बाना पढ़ाना आवश्यक हो जाता है। तब उसका युग पर दान पर या इस प्रकार के अन्य अतिरिक्त लक्षण पर लक्षण देते हैं। नवलक्षण ऐसी सजा है जिसमें जितना नया लिखा जा रहा है और जितना नया लिखने वाले हैं सब के साथ समा जाते हैं। लेकिन उन लक्षणों के लक्षण में अपनी अपनी निजता एव विविधता है। इसलिए 'नवलक्षण' के बारे में कोई निष्पक्ष द सन्ता भरे लिए सम्भव नहीं है। क्योंकि यह सना समुच्चय बोधन है और अपने आप में कुछ आबिष्टेरी है। कुल मिलाकर मुझे लगता है कि परस्पर की सबेत्नारमक सम्बद्धता पर उतना आग्रह नहीं है जितना होना चाहिए और निजत्व की प्रतीति पर कुछ ज्यादा निभरता है।

मैं एक मिसाल देना चाहता हूँ, जैसे राजकुमार । राजकुमार की जितनी कहानियाँ पिछले दिना आई हैं मुझे लगता है कि उनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उनके जितने भी पात्र हैं वे सब किसी स्तर पर आकर यह महसूस करते हैं कि उनके आदर सवेदना की शक्ति नष्ट हो गई है । लेकिन कहानियाँ इसका संकेत नहीं करती कि लेखक की सवेदना-शक्ति भी नष्ट हो गई है, तो यह नतीजा निकाला जा सकता है कि लेखक के सामने जो वस्तु स्थिति है जो जीवन की घटना है उसमें सवेदना नष्ट हो गई है, या बहुत कम हो गई है । और उसके परिणामस्वरूप लेखक की सवेदना ने यह रूप ले लिया है ।

—जसा कि मैंने कहा है निजत्व का बाध पीडात्मक होता है । अब पीडा की तीव्रता प्रेरित करती है कि उसका निवारण हो । इस चपटा म समूह-सत्ता और परस्परता की सृष्टि होती है । राजकुमारी की मिसाल मरे लिए बहुत मन्दगार नहीं हो पाती । उनकी रचनाएँ कुछ पढ़ी तो हैं लेकिन अलग से उनकी याद मैं नहीं कर पाता । पर यह मैं समझता हूँ कि कहानी के पात्रों में उसके चित्रण में निजत्व हो स्वयं बयावर में उसका मोह न हो । बल्कि पात्रों चरित्रों के निजगत चित्रण का चित्रण सफलतापूर्वक हो पाता है तो यह तभी हो सकता कि जब लेखक स्वयं निज के अहवाद का गिराव न हो । लेकिन आज निजत्व के चित्रण से अधिक उसकी लिपटन अर्थात् स्वरति जसी जो चीज मिलती है, उससे मा सत्ताप नहीं पा सकता । आजकल समाजवाद का समूहवाद का जो खोर है उसकी प्रतिश्रिया में निजत्व और व्यक्तित्व पर बल धा पडा है । किन्तु राजनानि की एवागिता का उत्तर साहित्य की एवागिता से नहीं लिया जा सकता । मुझे लगता है कि नवलेखन में जस वह उत्तर उलटी एवागिता से देने का प्रयास भी कुछ कुछ है ।

अगर मैं कहूँ कि नवलेखन की समस्या हिन्दुस्तान में इस वकल यत् है कि आप जिन धारमबोध की प्रतिश्रिया बहुत हैं उसका कोई रास्ता उसको नजर नहीं आता तथा जा सिद्धांत हमारे बुजुर्गों के लिए पर्याप्त रहे हैं वे उसको पर्याप्त नहीं लगते, और इस कारण जिसके पास पर्याप्त सिद्धांत हैं उसका ऐसा संकेत है कि उसमें संवेदना नहीं है तो क्या यह शकत होगा ?

—आप सही कहते हैं। सबदन का ही घम मान लेंगे, तो जीवन-पराक्रम का आयात स्वतन्त्र हो जायेगा सिर्फ दबना रह जायेगा। भावुक विशेष कुछ कर नहीं पाता। सवेदन में इसलिए जो विलकुल गीला है, बेहद आद्र है तो समझना चाहिए कि भीतर का अस्थि-संस्थान उसमें क्षीण है। अस्थितन्त्र मजबूत-न हो तो शरीर का रूप लावण्य भी नहीं रह सकता। भाव का भीगापन अधिक है, तो अवश्य घबराता चाहिए। लेकिन निज बोध अपने आप में कष्टकर ही है। निज का पर से सम्बन्ध जब तक नहा हाता तब तक स्वत्वबाध में भी रस-सामर्थ्य नहीं आता। तो स्वत्वबोध का मैं बहुत उपयोगी मानता हूँ, बसतों कि उसकी पीडा में रमझर रूब न जाया जाय बल्कि उससे मुक्ति पान में उठा जाये। पात्र को यदि भेलत नहीं, उससे जूझत नहीं है, तो एक रोमांटिक साहित्य पदा होता है। वह स्व (रति) मूकक हाता है। पीडा को मानना है पर रमणीय नहीं मानना है।

इस बारे में निजी तौर पर आपसे पूरी तरह सहमत हूँ कि पीडा में रस लेना गुप्त नहीं है। लेकिन दो दिक्कतें आती हैं एक दिक्कत यह आती है कि जिस समूहवाद या समाजवाद कह सकते हैं, बसल वही नहीं बल्कि जो व्यक्ति-वाणी या उदारवाणी सिद्धान्त कहे जाते हैं वे भी आज निष्फल लग रहे हैं। ममस्वा नय लेखक के सामने समूहवाद के प्रतिपार की नहीं है कुछ लागू के लिए यह बात ही सती है लेकिन सम्पूर्ण जो प्रक्रिया है उसके लिए सत्य नहीं है। साथ के लिए भी सब नहीं थी। हान ही मैं जैसा उहोने कहा है कि १९वीं सदी का प्रतिनिधि उपन्यास 'युद्ध और शान्ति' है और यदि बीसवीं सदी का कोई प्रतिनिधि उपन्यास होगा तो वह समाजवाद-विषयक होगा। और साथ ही निजी जिज्ञासा भी गवाह है कि उहोने अपने आपको सांभूतिक भा दोलना से वाटन का कारिग नहीं की। एक यहाँ पठ गया है जहाँ तब मैं समझता हूँ, कि कुछ मूल आस्थाएँ मौजूद हैं जस कि बीसवीं सदी के सदाश में जातिभेद की समाप्ति उपनिवेशवाद की समाप्ति, या स्त्री-पुरुष के सम्बन्धों में समानता व्यक्ति को स्वतन्त्रता, राज्य द्वारा निजी जीवन में हस्तक्षेप की समाप्ति, इस तरह की कुछ मूल आस्थाएँ मौजूद हैं। लेकिन

चाहे वह व्यक्तिवाद हो चाहे समाजवाद हो, चाहे समूहवाद हो, जो भी राजनीतिक दशन या सिद्धांत उसके सामने आते हैं वे सब उसको अप्रसंगिक लगते हैं। इसलिए वह इन मारे सिद्धांतों से जो तात्कालिक साहित्य में किसी हद तक निहित होते हैं अपने आपका काट लेता है। राजनीतिक संगठन से बात लेता है, लेकिन उद्देश्यों से नहीं काटता। इसको हिंदुस्तान में देखें तो भी बात वही आती है। लेकिन बने बनाये सिद्धांत उसको अप्रयोज्य लगते हैं। आपका क्या विचार है ?

—साथ सामूहिक आन्दोलनों में गरीब हो सकते हैं लेकिन अस्तित्ववाद निश्चय ही समाजवाद नहीं है। बल्कि दोनों में सामाज्य भूमि भी लगभग नहीं है। साथ के लिए अथवा हर कितना के लिए जरूरी होना है कि वह समूह से समान में न टूटे साथ ही समय से भी जुड़ा रहे। इस तरह हर कोई प्रतिक्रिया प्रवृत्तियों के बीच जीने के लिए रह जाता है। बल्कि साहित्य में जैसे मुझे लगता है वह इतना नहीं आता जो व्यक्ति स्वयं है बल्कि अधिक वह आता है जो वह नहीं है सिर्फ होना चाहता है। साथ के अन्तिम अथवा वास्तविक जीवन में यदि भुकाव इस प्रकार सामूहिक आन्दोलनों के प्रति दीवता है तो शायद इस कारण और भी अनिवाय है कि लेखक में उसका भुकाव उलटा रहा हो।

आपकी यह बात सही है कि आज इति निश्चिति का भाव टिक नहीं सकता है। सिद्धांत कोई नहीं है। सिद्धांत से सहारे का काम देते हैं। सहारे से के लिए उन्हें रखा जा सकता है। समय वह भी आ सकता है कि वे काम न करें, और तब उन्हें छोड़ना ही कर्तव्य हो जाता है। आप स्त्री पुरुष सम्बन्ध की परिघटना और नई धारणा की बात करत हैं उसे ही लीजिये। मुझे नहीं मालूम कि वह नई धारणा क्या है। स्त्री का अपना भी निजत्व है इसका क्या नई धारणा कहा जाएगा ? मैं स्त्री-पुरुष के बीच के आन्वयन का पवित्र मानता हूँ। इसको काम कहते हैं और काम मरे लिए अतीवरीय शक्ति नहीं है। किन्तु मैं समझता हूँ कि काम की उत्कृष्टता एक विनाश प्रवार के निपट और समय का जन्म दे सकती है। प्रेम में काम की पूजना है और अन्वय में प्रेम की पूजना है। अतः ऐसे पौरुष की संकल्पना ही नहीं, बल्कि दशा भी कर सकता हूँ कि जो

रूढ़ अथ म वापुस्यता-जसा लगे । अहिंसा मरे लिए परम पराक्रम है इसी तरह ब्रह्मचर्य परम पौरुष । मैं नहीं मानता हूँ कि यह दृष्टि पुरातन अथवा नूतन कत्तो जाने के लिए है । किंचित्त दुर्लभ आवश्यक है । मुझे लगता है कि नव म भी जो नय है, ऐसा लेखन अनिवायत इस दशन की ओर बढ़ेगा । और तब बवल काम या सैवम की इलाधा न मितगी न समथन । आज तो अवश्य जसा नहा दोलता ।

✽ कमलेश्वरजी की एक कहानी है—'एक अदलील कहानी ।' उसम निरूपण है इस समय की स्थिति का, कि ब्रह्मचर्य भी नहीं है और काम भी नहीं है, बल्कि एक तरफ दुर्गव द्विपाव है दूसरी तरफ मन म बढ़ती हुई कुण्ठाएँ । या मोहन राफेश की कुछ कहानियाँ जो मातृत्व की लालसा और आधुनिक जीवन की कठिनाइया के टकराव को यत्न करती है । या एक और व्यापक समस्या अवसर आती है । खास तौर स म यम वग व लडके-लडकी, सचमुच किसी अथ म चरान नहीं हात । या ता बच्चे रहते है या माँ बाप बर जात है । इन सब चाजा का लेकर जसा जापन भी कहा ह एक व्यापक स्थिति है, जिसकी प्रतिक्रिया नवलसन मे मिलती है । विशिष्ट रूप से, क्या आप इस स्थिति पर कोई राय देना चाहते ? इधर किन्ही लखका म क्या आपको ऐसा लगता है कि व निरत्व को पार कर पा रहे है ?

—इधर की बहुत सी कहानिया म जावन व छुटे और ढक पटनु भी प्रकाश मे लाये जा रहे हैं । यह व्यक्तिगत और सामाजिक स्वास्थ्य व लिए हितकर हागा । पटते सचमुच ऐसे मुक्त नाव के भाग म कुछ मर्यागा थी गिनकी पार करना मुश्किल हुआ करता था । आज की परिस्थिति कुछ ऐसा सकुलित है कि मर्यागा की सक्ती रह नहीं गई है और बुद्धि की विश्लषण गक्ति खुल गद है । कुन मिचाकर यह अच्चा ही है । किन्तु बुद्धि अपनी सीमा से भ्रान काम नहा कर सक्ती अथात् प्रकाश नहीं दे सक्ती । निसके पास घास्था नहीं है दूसरे शब्द म दिगा नहीं है उस बुद्धि द्वारा जो रचना हागी, उसम व्यग सौपा ही सक्ता है आलोचना पनी कटाक्ष रोमाच का लेकिन उस रचना का दान, उसका प्रभाव, स्थायी शायद न हो पाय । गुजनात्मक रचना मे सडन,

व्यय, कटाक्ष उपयुक्त नहीं होगा ऐसा नहीं किन्तु मूल प्रेरणा आलोचनात्मक नहीं होगी। कारण बुद्धि नितान्त विस्लेषणात्मक है और उसको सिर्फ अपना शोक पूरा करने की छूट नहीं दी जा सकती। बल्कि उसके निर्माण में लक्ष्य रहना चाहिए। इन दोनों प्रकार की रचनाओं अर्थात् घटनात्मक और समीक्षात्मक में एकाएक पहचान कर पाना आसान नहीं। लेकिन विवरण और विश्लेषण जहाँ स्वयं में प्रधान और चमत्कारों से बन जाए वहाँ अधिकांश भरे मन में सगंय हो जाता है। दिल तो हर आत्मी के भीतर इतनी सुरक्षा में रखा गया है कि वह हाथ आ नहीं सकता। जो दीप्तता है वह गरीरायमक है। इसलिए जहाँ हृदय के व्यापारों का ज्वलन्त सुनिश्चित विवरण या विश्लेषण है वहाँ मुझे मतवालिता की आशाका होने लगती है। सही दृष्टि घटनात्मक के प्रति उन्मासीन नहीं हो सकती। इसलिए कहानी चाहा घटनात्मक या स्थूल रह तो यह उचित ही है। जो आंतरिक है, उसने प्रति ता पढ़ने वाले में उन्मुखता जगती जानी चाहिए। अर्थात् रचना में उसकी सूचना हो सकती है प्रतिपादन या निर्देन नहीं हो सकता। घटना में सत्य निश्चय एव गूढ होता है। किन्तु घटना ही सत्य की वाणी भी है। अर्थात् घटना दीप्तता है। सत्य को उसमें से ढूँढना पड़ता है। कहानी में भी व्यक्त अव्यक्त या बुद्ध यही सम्प्रदाय समीचीन होगा।

भाषण बुद्ध नाम सामने किये हैं। नामों के बीच से मुझे राह ढूँढना मुशकिल होता है। जने श्री रावेण के गायत्री राजेन्द्र यादव को लिया गया हो, तो इन दोनों में मुझे बहुत कम सामान्य मिलता है। सगंभय अलग ही नहीं, बल्कि परस्पर विरोधी-जसा लक्षण भी लगता है। सूचकता या रावेण में है राजेन्द्र में भावर जम उसी परत पर परत खोल कर देखो कि गिल्प में परिणत हो जाती है। यह दूम्गे पद्धति मुझे खीच नहीं पाती। क्योंकि मेरे लिए मेरी कल्पनात्मकता के लिए यह उनका अवयव नहीं छोड़ती। कर्मदेवता में घटनात्मक का अभाव नहीं है। किन्तु घटनात्मकता वहाँ केवल उपादान नहीं है, निश्चय स्वयं में सायन तक है। मैं स्वयं घटना का सत्य के संवेत के रूप में ही महत्त्व दे पाता हूँ। मेरे में तो वह घटन है, जो व्यक्तिगत का अर्थ

मे प्रगट भी कर सकता है ढँक भी सकता है । वस्त्र के विवरण की साधकता इसमें है कि उस पर ध्यान न जाय, ध्यान सीधा उसके द्वारा व्यक्तित्व पर जाये ।

■ इस समय जो अपदातया नई पीढ़ी है उसमें सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण रचनाएँ आपको किन कहानीकारों की लगती हैं ?

—यह तो आप मुझे घसीटते हैं । मैं निष्णय नहीं देता हूँ । न सबका पूरा पढा ही है । उल्लेख के लिए नामों की आपने ही कुछ सहायता कर दी है । मोहन राजशंकर लेखन न मुझे पकड़ा । छिटपुट रचनाएँ ही दगी थी, फिर सग्रह मँगवाकर पढ़ गया । इसमें पहले निम्न वर्गों की आर में नहीं जा पाया था । लेकिन नये सग्रह जा में प्रयत्नपूर्वक प्राप्त किये शीघ्र पढ़े, उनमें मुझे निम्नलिखित सूचकता विशेष मालूम हुई । सूक्ष्मता और ताल्कापिकता की दृष्टि से मोहन राजशंकर अलग हैं और स्वयं हैं । इधर जो नाम आते हैं उनमें कमलेश्वर की रचना में सत्त्व है । वे इतनी महीन नहीं हैं कि हाथ से खा जाएँ । राजेश्वर की कुछ रचनाएँ अच्छी लगी पर अभी मुझे पढ़ने पढ़ते एक ऐसे द्वाइग रूम की याद आ जाती है जिसमें बढिया बढिया सामान इतना था कि जगह ही शेष नहीं रह जाती थी जिस रूम कहो । उस द्वाइग रूम में पहुँच कर विस्मय तो हुआ पर जो कुछ घुट गया ।

बाज-बाज कहानियाँ ऐसी नजर में आई हैं कि वहाँ टिक गई हैं । उनमें लेखकों के नाम सहसा माद में प्रस्तुत नहीं हो रहे । उषा प्रियम्बदा की कुछ कहानियाँ पढ़ने पर दर तक मुझ में भूमती रह गई थी । लेकिन लिखने वाला का मनका अत्यन्त व्यक्तित्व है । और गितान में तिस्रो का नाम उल्लेख से बचा रह सकता है पर व्यक्तित्व अपना स्थान रखते हैं । बन्नी का वितान लम्बा है लेकिन लक्ष्य की एकाग्रता उतना नहीं लगी । शलभा की व्यापक सहानुभूति है और अरिष मासल और विश्वसनीय होते हैं । राजकमल चौधरी की शूक्रप्यारी और पनी है । सर्वेश्वर, रघुवार के पास मन्तव्य हैं और वे सूक्ष्म हैं, किन्तु रचना इतनी वास्तविक और गारौरिक नहीं रह जाती ।

भोग्य का लेखन स्वतंत्र और पुष्ट है और अप्राप्य दुःप्राप्य को पाने पकड़ने के पीछे नहीं है। कृष्णा सोदती की इधर एक कहानी मित्रो मरजाना अत्यन्त सगुणत कहानिया में से है। मुझ उसकी निमन सटस्थता विस्मित कर गई है। दूसरे अनक बंधु हैं जो अपने ढंग से कीमती काम कर रहे हैं और नये जायमान की आर करने के प्रयासी हैं।

हाँ पीलियो व सवाल न इधर कुछ दिक्कत पण कर दी मानूम हाती है। तीस से चालीस तक की पीढ़ी यदि अपने का नया कहती है तो बास या याइस से बत्तीस तक की पीढ़ी अपने को क्या कहना चाहेगी? इसलिए समय बोधक शब्द से कहानिया में अन्तर डालन या देखने की पद्धति साहित्य की दृष्टि से बहुत विश्वसनीय नहीं हो सकती। इस काम के लिए किना गुणात्मक विशेषण को लिया जाए तो ज्यादा अच्छा है।

अनेक अंगर साच समझकर नई कहानी लिखना है एसी या धसी कहानी लिखता है, तो इस शत पर लिख सकता है कि उसकी यह कहानी जन श्राय न रहे जाय। अर्थात् हरेक यत्र वह सजनगील ललक है अपनी ही कहानी लिख सकता है। किसी भी नाम-नमून वाली कहाना वह नहीं लिख सकता।

कहानी, नई कहानी, अ-कहानी : कुछ प्रश्न

* कहानी विधा में परिवर्तित शिल्प और कथागत मूल्या को उनकी परिवर्तित होती स्थिति को, आपने किस रूप में ग्रहण किया ?

—शिल्प और विधास का मुझे कभी पता ही नहीं रहा। कभी न मैं उन पर अटका न रुका। कथ्य भी मेरे पास बाहर से आया यह मैं नहीं कह सकता। इसलिए बाहर होते हुए किसी परिवर्तन की चिन्ता ने मुझे विशेष नहीं सताया। परिवर्तन टूटा अदर भी होता ही रहता है। नहीं तो जीवन चेतन नहीं कहनायगा। उन परिणतियों को मैं और मेरा लेखन स्वीकार करता चला गया चतना ही मेरे लिए काफी है। कहानी के बनाव के बारे में जो मैं शुरू से निश्चित रहा, सो उसका लाभ ही मुझे यह मिलता रहा कि एक कहानी दूसरी जसी नहीं बनी। मय अपन आप म स्वतंत्र और भिन्न बनती चली गी। जानता हू कि कहानी विधास के बारे में बहुत चर्चा चलता है, लेकिन कहाना जिसे लिखी हो वह उनसे अप्रभावित बना रहे ता इसी म मुझे खरियत मालूम हाती है।

‡ क्या प्रकहानी का परम्परा स हटकर कोई अपना स्वतंत्र दशन हो सकता है ? या महज भाषा और कथ्य के नगण्य के कारण ही वह अपने का अलग साधित करना चाहती है ?

—वहाँ 'अकहानी' शब्द में कहानी के इन्कार की जो ध्वनि है वह क्यों ? बस, उमा से वहाँ अहकार का आभास होता है। कहानी कोई मीमित विधा तो मय रह नहीं गई है। उमम सभी तरीके की रचनाओं का समावेश हो सकता

है। शत केवल यह है कि वहाँ गद्य अभिधा में नयी, बल्कि व्यञ्जना में अपनी बात कहे। 'कहानी' सग्रा में इतना बुद्ध्य अवकाश होत हुए फिर 'अकहानी' शब्द का निर्माण यदि करना पडता है ता मानूम होना है कि वह अनायास नही, एक सप्रयास प्रक्रिया है। इसलिए मुझे कहानी अकहानी की चर्चा कृत्रिम मालूम होती है।

■ अगर इस बात को आप मानते हैं तो यह बात काफी पहले तथाकथित नई कहानी ने भी क्या कुछ अशा में न की थी ?

—बैसा ही कुछ मनोभाव नई कहानी' शब्द के निर्माण और विनापन के पीछे मालूम हाता है। उसमें कोई साहित्यिक सत्त्व नही है। किसी भी एक समय में लिखी जानी हुई कहानियों के विविध्य में हम उनरें तो दीख पडेगा कि व तत्त्व बीज रूप में वहाँ भी विद्यमान थे जिन पर नई कहानी या अकहानी क निरूपण जोर देते दग्न जात हैं। इसलिए मरी सलाह होगी कि नित नये उठने वाले इन नारो से आप उद्विग्न न बनें, कहानी को जहाँ तक हो सक जीवन से तदगत माने रहें और साहित्यिक वादो और आग्रहा से अपन को मुक्त एव निविवाद बने रहन दें।

■ नई वस्तु अपन नयेपन के कारण कुछ काल तक नई रहती है। क्या नई कहानी अथ नई कल्पाने योग्य रह गयी है ?

—हर पल नित नया कुछ खिनता ही रहता है। तडके अघेरे ही गया सवेरा फूट आया था। दग्ग पौध में नयी कला उभर आयी है। न्तिन खिलने दापहर तक वह फूल बन आयी। यह सब अनिवाय और अनायास घटित होता है। कोई इसमें बाजे नही बजत न गार होता है। इसलिए जोर और गोर के साथ अगर कुछ विनापन लाया जाना या फिर जनकर उभारा जाता है ता निश्चय ही यह कुछ बना हुआ मामला है। इम डग का नया मार्का हुआ करता है जिसका ठण्ठा चलाने के लिए अमुक माल पर लगाया जाता है। इममें और जीवन की नित नवीन परिणतिया में कोई सम्बन्ध नही हाता। बल्कि यह शापन विनापनवाद नूतनता क नवाविष्कार में अवरोध और बाधा ही अधिक बना करता है। कारण, जि'दगी लेबिल क सहन लिखने वाला चाड नही है।

बल्कि वही ता वह और मुरझा जा सकती है। लेबिल के अधिकतर समूहगत मत-स्वाय पर चिपकने की आवश्यकता होती है। समूह साहित्यिक क्षेत्र में सदिग्ध वस्तु है। कहानी पर लेखक का नाम होता ही है वस, उसी व्यक्तिगत रूप, रूचि या वृत्ति के लिए साहित्य में अवकाश है। अधिक होने पर मानो राजनीति का क्षेत्र आ जाता है जहाँ स्वायत्त प्रयाजन ओढ़ लेता है और दलगत बन जाता है। हर व्यक्ति को साहित्य के क्षेत्र में हिम्मत होनी चाहिए कि वह अपने कलम के साथ अकेला खड़ा हो और गोल या भुण्ड बाँध कर जीने की आदिम आदत को चुनौती देता रहे। अनेक आधुनिक मतवादा के नाम पर यूथवद्ध होकर चलने के इन आदिम संस्कारों से मानव व्यक्तित्व को ऊँचे उठना चाहिए और साहित्य र्मी की दीक्षा देता है। उसे अन्न वरण के साथ और सत्य के साथ जीना आना चाहिए। उसे साहित्य के क्षेत्र में भी यदि पहचानी चल निकलेगी तो आगा फिर किससे की जा सकती है ?

अ कहानीगत प्रवृत्तियों के इन नामकरणों का आपके बत की या या कृपि आपके द्वारा लिखी जाने वाली कहानियाँ की सापेक्षता में क्या महत्त्व है ?

—मरी जानकारी में तो कोई महत्त्व नहीं है। कहानी हरेक की उसके व्यक्तित्व में अभिन्न होगी। बाहर पदा किये जाने वाले नाम और विशयण उम अभिन्नता में अंतराय ही ढाल सकते हैं। इसलिए वे किसी के लिए इष्ट नहो हो सकन, यानी इष्ट साहित्य सजना में किसी दूसरे प्रकार का प्रयोजन अभीष्ट हो तो वह अलग बात है।

अ आप अपना या अपने समकालीन सीनियर कथा-लेखक का एग्जीस्टेण्ट किन जूनियर लेखकों में हुआ मानते हैं ? अर्थात् जीने-ड्र अनेय किन लोगों में आज जी रहे हैं ?

—यह मैं कुछ नहो कह सकता। हर लेखक को स्वयं होना पड़ता है फिर प्रभाव वह जहाँ से चाहे ले। बल्कि उस प्रकार के प्रभावा के बीच वह जनमता जीना ही है। ये पचाय गये प्रभाव फिर उसके निजी और सश्लिष्ट बन कर व्यक्त होवे ता साहित्य रच जाता है। जहाँ दावा हा कि वह मौनिक है बहकर है,

ऐसा है, वसा है वही मान लेना चाहिए कि आत्म निर्मिति और आत्म स्वीकृति में कुछ फुटि रह गई है। दलकना अधभर होन के कारण हुआ करता है। दूसरे का इन्कार उसी अनन्य प्रभाव को जतलाता है। कृतन स्वीकार स्वस्थ व्यक्तित्व का लक्षण होता है। जहा दूसरा का इन्कार देखें नये पन का मौलिकता का दावा मुनें वहाँ ही हम सहानुभूति देने को तयार रहना चाहिए। कारण वहाँ स्वास्थ्य का अभाव और किंचित हीनता का प्रभाव है।

■ क्या आप इस दृष्टि से प्रेमचन्द को मृत मानते हैं ? अगर नहीं तो वे कौन लेखक हैं जिनमें प्रेमचन्द की परम्परा विवसित हुई है ?

—रान १९३६ में प्रेमचन्द जी क्या सचमुच गत नहीं हो गये ? लेकिन साहित्य उनका जीता है और जियेगा। दूर क्या जाऊँ स्वयं मैं अपने को उनसे उन्मूलन नहीं मानता हूँ। लेकिन हाँ मेरे प्रश्न उनका रूप दूसरा है कि जिनसे मुझे जूमना निपटना पड़ता है। मैं सुधारवादी दृष्टि इसलिए नहीं अपना सकता कि मैं अपने का मुँह सुधरा हुआ नहीं पाता हूँ। यह मरी अतृप्ति की बात है। लेकिन निश्चय ही नया मैं भी ऐसा तारा हूँ जो सुधारक मनोभाव रखते हैं। कहने लिखने के तीर तरीके मैं फिर कितना भी विभक्त हो वे उसी परम्परा को विवाहने वाले माने जायेंगे। एक लपन बताने वाला है दूसरा खोजा वाला मानना होगा कि आज यह नया इतने जानकार हैं कि वे आसानी से पाठकों के नज़रों के बताने सिखाने वाले बन रहते हैं। प्रेमचन्द के जमाने में लेखन एम० ए० वर्ग का काम हुआ करते थे। अब उससे कम तो पाठ्य होते ही नहीं, आगे डाक्टर इत्यादि भी हाँ तो अलग बात है। इस अतिविपत्ता के कारण मुझे सादेह है कि साहित्य उतना पुष्ट और स्थायी कलाचिन्तन कम आ रहा है।

■ नामवरणों तथा ग्राहियों और इधर जा क्या समारोहों का सिलसिला शुरू हुआ क्या आप उसे कहानी के क्षेत्र में भाव गतिरोध की प्रतिप्रिया मानते हैं या मजबूत कुछ लोगो के प्रचार के निमित्त एक आयोजित सिलसिला है ?

—गतिरोध में मैं यह चर्चा और परिणामों का अतिरेक निपला या उस अतिरेक से गतिरोध निकला कहना कठिन है। लेकिन दोनों में नाता अवश्य है। आप अपने साथ पाठ और सम्वाद में भुक्त हो सकते हैं तो लेखन निवृत्तता है।

वाद और विवाद की उत्कृष्टता म यदि रहते है, तो भाषण और समीक्षण निकलता है। यह भी हा सक्ता है कि भाषण-समीक्षण को ही लेखन म उतार लिया जाय। लेकिन तब वह साहित्य नही होता। हाँ पत्रवारिता का नाम अकार्य दे जाता है।

अ आपन कलकत्ता मे हुए समारोह म भाग लिया था—उस कलकत्ता-ममारोह मे, जिसम ममयनाथ गुप्त, विष्णु प्रभाकर मुद्राराक्षस इयाम परमार कुलभूषण, कमल जोशी, नरेश महेता रघुवीर सहाय अक्षतराय, देवेंद्र इन्सर राजकमल चौधरी मधुकर गगाधर आनंद प्रकाश जन आदि का आमन्त्रित नही किया गया। किन्तु आप उसम फिर भी पहुच। क्या इसका मतलब निकाला जाय कि आप भा विभी तरह के प्रचार की आकांक्षा रखते हैं या आप अपन को इतना अक्ल मटमूस करने लगे हैं कि आप बुद्ध लागो के साथ आ जाने क लिए मजबूर हुए हैं ?

—आकांक्षाहीन ता मे नही हूँ लेकिन कौन आ रहे हैं और कौन नही जा रहे हैं उनकी पूरी खबर रखन म जितना कुशल भी मे नही हू। साचता अवश्य हू कि मुझे उमम अधिक व्यवहारण और नीतिज्ञ होना चाहिए। पर मे अपन सम्बंध म स्वयं का लेकर निणय कर ले जाया करता हूँ। टीम के साथ चलना साधारण अधिक सकुचन होता हा, पर वह मुझे अब तक आया नही है। साधारण तथा मे कलकत्ता जा नही रहा था। २२ ता० तक यही जानता था कि नही जाना है। फिर जो पहुँचा तो वह बहुत बुद्ध इम कारण कि अपने आत्मीय यधुमा क अनुराध की अक्ल मणिप्टता समझ ली जाती। बुद्ध आवरण यह भी था कि मुझे अनुमान था कि वहाँ अभियुक्त के रूप मे पग होनाहोगा। मे अहिंसा का विश्वासी हूँ। नाम रहता है कि ऐमा परीणाआ म पढू, जहा प्रहार हो और देखू कि मे अपनी समता तो नही खोता हूँ। उमक साथ अपनी बात पर मो टड़ ना रहता हू न। इन मय कमजारियों के कारण मे कलकत्ता गया और यद्यपि बहुत म आवश्यक नाम अनामन्त्रित रहे तो भी वहाँ पहुँच जा म अपनी ओर से उनके प्रति कोई अनियय नहीं देयता। न, जान के लिए पछताता हो हूँ। बल्कि अच्छा हुआ कि मुझे परीणा मे पढना पडा। वहाँ की रिपाट बहारी

निकली हैं। अधिकतर मुझ पर क्षोभ उतारा गया है। मुझे याद नहीं पड़ता कि मैंने एक भी वाक्य गिगड कर कहा। उघड़े यदि कुछ शब्द झा गये तो उनकी चोट का मुह चुटु मेरी ही तरफ था। दाढ़ी में तिनक की बात बलगत है वैसे मैंने विग्रह की ध्वनि में कुछ नहीं कहा, न समझीते की ठकुर-सुहाती में ही कुछ कह सका। इस तरह सत्य और अहिंसा इन दोनों दृष्टियों से मैं उस परीक्षा में गापास हुआ यह मैं नहीं कह सकता। शिष्टाचार ऐसा भी हो सकता है जो सत्य की दन्ता को खा जाये, वह अपनाता उतना कठिन नहीं होता। साधारण सभा सौजन्य का निर्वाह सहज और ऊपरी व्यवहार है। वह आत्मीयो की गोष्ठी था और तकल्लुफ का प्रश्न नहीं था सचाई का प्रश्न था। उस सम्बन्ध में आन के दिन आवश्यक है हर कोई स्पष्ट और दृढ़ था। मत भेद के बीच जा सौजन्य फलित हो सकता है वही मूल्यवान है। कलकत्ता से वह पता होगा और बढगा ऐसा भरा आशा थी। बाद में जो अन्वहारों में छपा उससे आगा पूरी नहीं हुई और आगे के लिए मैं अवश्य सोचता हू कि ऐसी गाष्टियों में जान के बारे में अधिक समयी और सावधान रहू।

■ कथा समारोह के सम्बन्ध में आपकी क्या प्रतिक्रिया है ?

—वह कथा समागोह एक ऐतिहासिक घटना मानी जा सकती है। इतने विविध और विमुक्त लाग एक साथ आमानी से जमा नहीं होने। आगे भी शायद यह कठिन हो पर निष्पत्ति जा हा सकती थी गी हुई। लोग के भीतर के नकार निषेध अधिक बाहर आकर व्यक्त होते रहे और बातावरण में सम्बादिता उत्पन्न नहीं हो पाई विवादों स्वर मुखर रहा। सभाजन के समय कोई स्वस्थ और समग्र दृष्टि पीछे काम नहीं कर रहा थी। आयाजन क्वाचिन एकागा वृत्ति के हाथ में अधिकार बना रह गया। उतने खच में वही अधिक उपलब्धि हो मरनी थी। फिर भी यह कि एक अवसर प्राप्त हुआ जहाँ माहित्यिक लाग अपन मन का विग्रह और वाक की विद्वत्ता एक दूमरे पर निवाल फेंके। इस दृष्टि से समायोजन की उपयोगी और महत्त्वपूर्ण माना जा सकता है।

■ इधर आपका पत्र पत्रिकावा में उसकी रिपोर्टिंग पढी होगी। आप उगम सहमत हैं ?

कहानी, नई कहानी अथ कहानी कुद्य प्रश्न

—सहमति का प्रश्न कहाँ है। अपनी अपनी मनचीती लोगो ने लिखी और इसके सिवा दूसरा हो क्या सकता है। एक रिपोर्ट में उलटकामा के भीतर मेरे नाम पर कुछ उदाहरण दिये गये हैं, न वे शब्द मेरे थे न भाव मेरे आ पाये। उलटकामा के भीतर उह न रखा जाता तो पाठक समझ लेता कि वे लेखक की याद के शब्द हैं जने-द्र के कथन के चाहे न भी हो। तब उतना भ्रम न होता। आगे अगर ऐसी सात्रघानी रखी जाय तो अच्युत है। मुनासिब तो यह हो कि काट के भीतर के शब्द बक्ता द्वारा पहले प्रमाणित करा लिये जायें। मैं न उाकी सफाई देना जरूरी नहीं समझा। कारण मिथ्या के पाव नहीं होते। हर जगह उसकी काट करने दौडना उसको महत्व देना है।

अ हमने सुना है कि आपकी कलकत्ता-समारोह के बीच कुछ व्यक्तियों ने कांग्रेस पार क्लचरल फ्रीडम का एजेण्ट घोषित किया। क्या इस सम्बन्ध में आप कुछ कहना चाहते ?

—नहीं। क्योंकि जि-होने ऐसा कहा, प्रश्न उनसे होना चाहिए कि किस हेतु स कहा ? वह सस्था निषिद्ध तो है नहीं, अनिष्ट भी नहीं है। और यह मेरे लिए कोई कृत्यायता की बात नहीं है कि मैं उस सस्था से वास्ता नहीं रखता हूँ। नर भी कहने वाले को क्या बसे प्रचार की आवश्यकता हुई बही जाने। गानूम होत ही मैंने वह सूचना तत्काल बही अपने से निकाल बाहर कर दी थी। इतना ही मैं यथेष्ट मानता हूँ।

अ आज आप क्याकार और हिंदी कहानी की नियति क्या मानते हैं ?

—मैं तो मानता हूँ कि कुल मिलाकर वर्तमान भविष्य की ओर बढ़ रहा है और भविष्य उज्ज्वल है। कुछ पहवादी शक्तियाँ उस आगाप्रद भविष्य को अपने हाथ में या अघिकार में बंद मानती हैं तो, उनको भले निरागा प्रप्य हो सकती है किन्तु उनके नाते भविष्य ठिठकने वाला नहीं है। कई हैं जो कसह कोताहल से दूर हैं और कहानी के क्षेत्र में सही दिशा में कीमती काम कर रहे हैं। वह रचनात्मक काय टिकेगा और भावी को उजला करने वाला सिद्ध होगा। गार गरावा नहीं जा बस बँट जाने के लिए कभी-कभी उपन आया करता है। बाल गति से उसका सम्बन्ध नहीं है, चाहे उस गार का गुण-बोध जैसे दालों द्वारा ही क्यों न ऊपर उठाया जाता हो।

कितना नया, कितना पुराना

✱ आपके नारी पात्र आपके साहित्य की रासम बड़ी देन हूँ। लेकिन जिन नारों का विलक्षण चित्रण आपने कभी किया था क्या आप समझते हैं कि औद्योगिकीकरण के इस युग में उसमें परिवर्तन नहीं आये हैं ?

— मैं आपके प्रश्न का गण्डन नहीं करता। नारी जो मेरे साहित्य में प्रस्तुत हुई है कितनी साम्प्रतिक है कितनी आधुनिक है कितनी परम्परागत है यह मैं नहीं जानता। मेरे लिए प्रश्न वह असंगत है। सच यह है कि मैं उसके सामाजिक या सामयिक रूप पर नहीं अटकता हूँ। मेरे लिए धर्म का, नारी धर्म का प्रश्न रहा है। इस प्रश्न की दृष्टि से नारी का रूप में धर्मित हुआ काल-या-द्वैतगत विवरण विगल संगत नहीं रहता। जीवन का धर्म उत्सव और विसर्जन है। यह धर्म नारी का तीव्रता में अनुपात प्रतिष्ठित देखा जाता है। गांधी का अहिंसा का स्वरुप करतूरवा से मिला। जापुष्ट्य के लिए साधना का नितिभा और अध्येसाय का विषय है मानुस होना है वह नारी प्रकृति के लिए सुनम और और सहज बन जाता है।

मरीपत्नीसवेरस उठकर दिनके दोबजे तरनिरतर धर्ममसगी रहती है। उस धाम तक यह गिवायत नहीं हुई कि उस सारे समय में धाराम ही धाराम ता नहीं करना हूँ। इमाना जो चिन्तन और विवेचन नारी की दासता कहते हैं वे अपनी जानें। मैं तो इस उसका गरिमा और महिमा मानता हूँ।

कामा कीजियेगा, क्या यह पुरुष का दृष्टिकोण नहीं है ?

कितना नया कितना पुराना

—निश्चय पुरुष का दृष्टिकोण है। इसे निरा स्वाय माना जा सकता है कि आराम को वह अपना हक बना ले और गरिमा महिमा के नाम पर चाकरी स्त्री के पल्ले डाल दे। पर पुरुष ने ही अपने चिंतन के अभियान में स्त्री में भी आधुनिक चिंतन डाल दिया है। स्त्री भी यह मानकर कि पुरुष उससे कुछ बुद्धिमान है पुरुष की इस बनी हुई निष्पत्तता को अपने पग में स्वीकार कर लेती और मूत्र की राह चन पड़ती है।

उम दिन ही मुझे सुनने का मिना कि 'मुखदा में जैन' ने नारी के लिए घोर प्रतिक्रियावादी आदर्श प्रस्तुत किया है। लेकिन यूरोप में जन्म-जव गया, मुझे वहाँ की नारी की स्थिति अधिष्ठ करण और दयनीय प्रतीत हुई। जायिक स्वतंत्रता और स्वनिभरता के नाम पर वहाँ स्त्री को हीनतम स्थिति में डाल लिया गया है। यहा ता कि पैस के लिए जाने को बेचने का वह अपना प्राकृतिक हक मानती है। प्रगति और उन्नति की इस धारणा से भला और हो ही क्या सजता है। आज भी भारत में यह भूठ नहीं है कि आदमी कमाने का मालिक है, लकिन खचने की मालकिन स्त्री ही है।

म पुरुष अपने घर में पत्नी के खच के मामले में उतना स्वतंत्र नहीं हूँ जितनी स्वतंत्र मेरी पत्नी है। इस स्थिति का मैं अपने लिए धन्यता की स्थिति मानता हूँ। मेरा यह आधिक्य पारतन्त्र्य मुझे समय में रखता है।

✱ आप चाह न चाह, औद्योगीकरण के युग में स्त्रियाँ बाहर आयेंगी आ रही हैं

—स्त्री बमाती हो तो पति हानर पुरुष उम बमाई का नाम नहीं लेना चाहेगा। यह खयाल उममें अह भाव जगा सजता और सामजस्य में आडे आ सजता है। उससे फिर समाज-परिवार के मूत्र क्षाण और जिन भिन्न हाने की ओर बढ़ेंगे।

✱ इधर आपन अपनी कुछ बहानिया में स्त्री पुरुष के सबधा की प्रस्थिरता का विवेचन किया है। क्या यह बहना सहा होगा कि स्त्री पुरुष सम्बधा को आप गमाज के बधनों से परे—उनके उन्मुख प्रस्थितत्व की स्वीकार करते हैं ?

—समाज यदि आपसी सवधा के विकास को रोकने के लिए धेरा बन जाता है तो उसमें समाज का ही अहित है। प्रेम जड़ तत्त्व नहीं है। वह चिन्मय है इसलिए विकासशील भी है। जिसकी अस्थिरता आपने कहा उसको मैं विकासशीलता कहूंगा। पत्नी को पावर पुरुष का प्रेम एक नहीं सनता, न पति का प्रेम जकड़कर होकर रह सकता है। ऐसा ही तो यह प्रेम का अचलाप होगा। अर्थात् ईश्वर के प्रति अपराध ही जायगा। पार्तिव्य और सतीत्व अथवा पतित्व के अर्थ ही उस स्थिर और जड़ रूप में मानने के मैं शुरू से ही खिलाफ हूँ। शायद अमुक और मे घिरकर रह जाने को धम मान लिया गया था। मैं उनको खुन कर अधम मानता हूँ। यही आप और दूसरे बहुधा को मुख्य विचार्यन होने लगती है।

॥ हाल ही मैं कमलेश्वर ने आपकी भाभीया का कहानीवार कहा है। आपका इस सवध में क्या कहना है ?

—मेरी समझ में नहीं आया कि वह क्या कहना चाहते हैं। वैसे मैं स्त्री पुरुष सवधा में उस विगिष्ट कल्पना और धारणा को भारतीय सस्कृति का एक अनुपम उपहार मानता हूँ।

॥ सन ६० के बाद की कहानी ने धार में आपका क्या विचार है ?

—मैं काल की विभक्त करके पकड़ने के खिलाफ हूँ। जो लाग ऐसा करते हैं वे सत्य का अहित करते हैं। काल तो प्रवाही है। काल के पट पर सत्य अभिव्यक्त होता रहता है इसलिए काल की अमुक अथवा मे माहित्य की सत्यता का विभक्त नहीं किया जा सकता। अक्षयन के निमित्त विभाजन ही तो ही। आप इतिहास देखिये मावस ने भा ।

॥ आप मावस में बहुत प्रभावित जान पड़ते हैं।

—मैं मावस में प्रभावित हूँ इस अर्थ में कि मावसवादी नहीं हूँ।

॥ आप मानते हैं कि अक्षर एक दण्ड में कहानी बगली है ?

—परिवर्तन ही अक्षर-गण ही रहा है। वस जा या आज नहीं है—आज जो है, कल नहीं होगा।

कृता नया क्लृता पुराना

॥ मोहन राकेश, कमलेश्वर और राजेंद्र यादव न, आप समझते हैं वहाँ की नया दिशा दी है ?

—वहाँ न कि परिवर्तन तो होते रहते हैं। हाँ इतना जरूर है कि जेनेट्र और निमल वर्मा ने कम फन है। कमलेश्वर और जेनेट्र में अधिक फन है। यानी निमल और कमलेश्वर में, दोनों का समय एक होने पर भी वेहद फन है। सा क्या ? अंतर समय से नहीं पृथक् निजत्व के कारण से हाता है।

॥ आप नये लेखकों को क्या सदेश देना चाहेंगे ?

—वे भूज जायें कि वे एक दूसरे से कितने नय है।

॥ साहित्य की नवीनतम प्रवृत्तियाँ—मीड में अकेलापन और अंधेरे की आवाज के बारे में आप के विचार ?

—आज जो आर्थिक विकास है, पस की बहुतायत है उसमें व्यक्ति के अंध पर जोर पड़ रहा है। इस तरह बुद्धिवाद टेला जाकर अध्यात्मवाद की ओर बढ़ता जा रहा है। इस अध्यात्मवाद में कहा गया है कि इसान अकेला दुनिया में आता है अकेला जाता है। वही बात आज दाहरायी जा रही है—साहित्य चेतना या वह सूत्र मूलाधार बन रहा है। व्यक्ति को अस्तित्व के विराध में अस्मित्व की चिंता अधिक है। निज की निखन के बनाम पान और टिकान की चेष्टा उसके लिए आवश्यक बन आई है।

॥ आपकी जीवन में जो कुछ कहना था, वह कह चुके या अभी कुछ कहना बाकी है ?

—अरे, अभी तो मैं जिंदा हूँ। जिसके लिए इस दुनिया में आया हूँ वह प्रयोजन हो गया हाँ और फिर भी मैं यहाँ रहने दिया जाऊँ, तो यह ईश्वर के दरबार की भूज हागी, जा हुआ नहीं करती।

॥ आनकत आप क्या लिख रहे हैं ?

—कुछ नहीं।

॥ क्या आप समझते हैं कि आत्मतुष्टि के लिए लिखा जाना है ?

—मैं यह बात ६६ प्रतिशत सही है कि अहंता के लिए लिखा जाता है। यह बात ५१ प्रतिशत सही है कि अहंता से मुक्ति के लिए लिखा जाता है।

॥ वगल की भूखी पीढी के बारे में आपका क्या क्या है ?

—मैं समझता हूँ उनमें भूख कम है या नकली है या है ही नहीं। याने पीन की चीजाँ से बाजार भरे पड़े हूँ उन पर क्या टूट क्या नहीं पड़े ? लगता है, उनकी भूख पेट की भूख नहीं है।

॥ क्या आप यह नहीं समझते कि यह भूख पेट की नहीं है। कुछ और ही भूख है जो कविता में निक्कन रहा है ?

—यानी वह भूख सिर्फ कविता वाली है। मुझे यह लगने लगा है कि गान्धे से मुक्ति नहीं है इसलिए गान्धे के द्वारा जा अभियोजना है उसकी ओर पूरा ध्यान कभी मेरा नहीं गया था—अब ता उमस भी कम हो गया है।

॥ आज के युवकों के विद्रोह के बारे में आपका क्या कहना है ? उनके अन्दर जो गाली है उसके लिए कौन दोषी है ?

—पहले ता गाली उनके अन्दर पदा है यही गलती है। अगर वह पदा हा भी गयी है और वह मुझ जैसे के ऊपर निकल कर खतम हो जाती है तो यह हमारा सही उपयोग होगा।

॥ लविन गाली पदा ही क्या हो ?

—सबसे अधिक कि मन स्थिति और परिस्थिति में सही सम्बन्ध स्थापित वे नहीं कर पायें। परिस्थिति ता सदा धामने वाली होती है। यदि हम उसे स्वाकार पर लें ता शोभ की जगह शर्म का आरम्भ हो सकता है जैसे मैं शोभ, शोष विद्रोह आदि को गृजनारमक प्रेरणा की दृष्टि मानता हूँ।

॥ किसे दोष दिया जाय ?

—दोष दिया जाना ही नहीं होना ही दोष दिया जा सकता है। आज के विद्यार्थियों का जन-दोष नहीं देगा। इसमें दोष वह क्षमता भी मानता है।

॥ आपके विचार में भारतीयता क्या है ?

—कुछ तो वह जो प्रकट है। जैसे सामाजिक रीति-नीति रहन रहन दृष्टान्त के रूप में और साँच। और कुछ है जो अव्यक्त है। उसका सम्बन्ध आत्मा से है। वह मान्तरिय हुई। उसी पर मरा ध्यान है। उसमें लेने से

अपने को देना प्रमुख है। यह भारतीय सस्कृति और भारतीयता का मूल तत्व माना जा सकता है।

✽ क्षमा कीजिये हमारा फाटापापर नहीं आ सका।

—बाइ बात उहीं पुराना ही बित्र छाप दीजिये। उसमे में जवान लगूगा।
अच्छा ही है।

• • •

कहानी-लेखन और न जानना

यह कथा समारोह तनिक विशिष्ट है कि सभी तरह के कथाकार यहाँ है । कुरसी उधालना मन भारत में नहीं देखा है । हाँ लका में देखा है और जिसने पास उधालने के लिए गलत हैं वह कुरसी क्या उधालगा ? जितना जो लक्ष्मी-चन्द्रजाने कहा पहले तो उसमें मन में आतंक छा गया । उसके बाद फिर अपक्षार्ण बस्तानी जो उधाल रयी हैं हम सबमें उसमें कुछ घबराहट बढ़ गयी । मैंने जिज्ञासी में केवल एक इम्तहान लिया है वह काफी है । बारबार इम्तहान में पड़ें इसी दर से मैं आता नहीं था । कहानी लिखन तो मैं तिल जाता हूँ पर कहानी के बारे में पूछ लाछ होगा और परीक्षा होगी अगर आन से मुझे ऐसा पता लग जाये तो गायद अब स लिखना बंद कर दूँ क्योंकि मेरा अपना अनुभव यह है कि जानना जब काफी नहीं होता है उसमें मन नहीं भरता है तब कहानी शुरू हाता है और कहानी का भाषा जीने की भाषा है जानने की भाषा नहीं । जानने की भाषा जो कहाना पर लागते हैं और अब ता करते हैं कि कहानीकार से कुछ जानकारी भी हासिल करें कहानी में सम्बन्ध में वे शायद ज्यादाती करते हैं । मैंने कहानी लिखी, किस जीवन दृष्टि से लिखी जो वनदृष्टि से कुछ ऐसा लम्बा भारा भरकम गलत है कि जीवनदृष्टि गलत उस समय मेरे वान पर आ जाता था गायद कहानी त्रियो गही जा सरती थी । कहाना तिल गय, लेकिन जीवन दृष्टि का, बहन्य्य का पता नहा है वह अब तन निर्मित नहीं हूँ क्योंकि जब भी दृष्टि कोई बनती है, जीवन में ऐसी कुछ घटनाएँ दखन में आ जाती हैं कि वह दृष्टि फिर तिल पुनकर साफहा जाती है । एना मात्रुम हाता है कि दृष्टि न बन पाये, तभी कहानी-

कार के लिए खरियत है। जहां जन्म गयी दृष्टि, फिर आप कुछ तत्ववाद लिखिये, कुछ और लिखिये, कुछ उपदेश दीजिये और बहुत से काम हैं जिसके पास जीवनदृष्टि प्राप्त हो गयी वह तो सिद्ध हो गया। फिर उसका कहानी लिखन की आवश्यकता का खयाल रहना ही नहीं चाहिए। मैंने तो कम से कम कहानी दृष्टि प्राप्त करने के लिए लिखी, दृष्टिदान के लिए नहीं। मुझे लगता है कि जीवन कितना गूँथ, अनन्त, विलक्षण और रहस्यमय तत्व है कि नहीं लगता कोई दृष्टि ऐसी हो सकती है जो यहाँ से वहाँ तक घेरे में उस बाँध ले। होते हाग कोई सिद्ध लोग पहुँच हुए लोग जो घर लेते हाग जीवन को लेकिन मानूँ नहीं कि यह अपने का कितना घेर लेते हैं। गायन जीवन के नाम पर वे अपने को घेर लेते हाग। जीवन तो क्या घिरता हागा क्याकि जीवन तो अनन्त है। अनन्त काल है लेकिन अनन्त काल भी जीवन का अन्तता को समाप्त नहीं करता है चुकाता नहीं है। दिमाग है हरएक के पास है और करीब करीब हर आदमी यह साक्षता है कि जो उसके पास है और जितना है वह दूसरेके पास नहीं है, एक उसके पास है और आपके में सारी दुनिया है। अबल चीज ही ऐसा है। दूसरे का धन बड़ा लग सकता है लेकिन दूसरे की अबल कभी बड़ी नहीं लग सकती है। तो मेरे मन में गुरु से इस अन्त नाम की चीज का अविश्वास रहा। और मैंने जब लिखना शुरू किया तो मुझे ऐसा लगा कि प्रश्न और सत्य गुरु से ही आ गया है। लिखन लगा तो लगा सत्य हुआ कि क्या यही ठीक है इतना ही ठीक है? य जितने भी हमारे मत हैं मान्यताएँ हैं कि हम जन्मकर बैठ जाते हैं जिसके लिए अपल का हम मीना दते हैं कि वह फमला करे, मुझमें बन। यदि दुनिया को खण्डित कर दें वगैरे में बाट दें तो यह अपनेपन के माह में होता हागा। इसका मूल्य साँदग्य है। यह काम बड़े लोग के लिए ही छाड़ देना चाहिए। मेरे लिए तो जिनासा ही काफी है। नानी बनन की अभिलाषा का मेरे बस की है नहीं। मेरे लिखने का कारण जिनामुता और सम्पन्नता है। जिसको कहानी लिखना है उसका विनता से व्यवहारना चाहिए और अज्ञता को कभी छाड़ना नहीं चाहिए। जो जान सत्य है, टिक्नवाला है उसका रूप सत्य का है मतवांतिता का नहीं है। जान यह है जो जानन को समथ कर सकता है। जानन

की इच्छा ही बुद्धिमत्ता का लक्षण है—जा जान गया कि वह जानता है, जान चुका है वही है जो नहा जानता है। और जो यह जानता है वह इच्छुक रहता है। अगर कोई विचार है तो उसे आचार में परिणत करें। दूसरा से टकराने के लिए वह उसे नहीं फेंकता। वह लोग जीवन में परास्त हो गये हैं टूट गये हैं मिल गये हैं जिन्होंने जीवन में धवन जाना ही जाना है। दो के बाद जिन्होंने तीन चार एम०ए० किये हैं उनकी गति आप देख लीजिये कि क्या हो गयी है। जीवन में जो उपलब्ध होता जाता है और फिर जीवन पर घटित होता जाता है वह तापान है। मैं तो इसी में खग्नित देखना हूँ कि किनारे से निकल जाऊँ। हमारी कहानी लेखक विरादरी में से कोई इसका जवाब देगा। इस समारोह की निष्पत्ति क्या होगी मैं कह नहीं सकता। क्या का गति में वेग आयेगा आये तो बहुत अच्छा है। लेकिन अधिक सम्भव यह भी है कि अवरोध आयेगा। क्या कहानी लिखा जान और पढी जान से चर्ची जाने का चीज हाँ तब तो समझ लीजिये कि क्या आयेगा कि अवरोध? कहानी एक ऐसी चीज है कि जिसमें बाल और पत्तन बाल के बीच किताब विचौलिया की आवश्यकता नहीं होती ईश्वर और मनुष्य के बीच पुजारी इत्यादि इतने लोग होते हैं कि ईश्वर गूढ होना चला जा रहा है। मैं मानता हूँ कि कहानी भी ऐसी ही सीधी-सादी चीज है कि उसमें एक हमारा विचौलिया हो जो लेखक और पाठक के बीच कहानी की व्याख्या करता मैं मानता हूँ कि कहानी जब तब पाठक और लेखक के बीच पनी जाती है, समझी नहीं जाती। यह सम्भव है कि इस अवधान के कारण पाठक भी प्रभावित हो कि कितनी ऊँची बात है जो हमारी समझ में नहीं आयी। और लेखक भी समझे कि पत्तनवान् चमत्कृत रह जाते हैं—इसमें बड़ी चाँद क्या है? आम तौर पर जो चीज समझ ली जाती है उसका मूल्य क्या है यह तो बहुत सस्ती चाँद है। ऐसी चीज होना चाहिए जिसे समझन में दिमाग पर चार पद। इस व्यवधान से आलाचन प्राण्यापक समीक्षक क्या जानो आदि का समावेश हो जाना है तो मैं मानता हूँ कि कहानी की प्रतिष्ठा उसमें घटता ही है। एक और चीज है जिसके बारे में चर्चा चलता रहती है कि यह जा समय है युग है समाज है वर्तमान है इनके साथ कहानी और साहित्य का सम्बन्ध क्या है?

कहते हैं कि साहित्य दपण है समय का, युग का दपण ही हो तो साहित्यसे जो अपेक्षाएँ हैं वे पूरी नहीं हो सकेंगी। अगर केवल मात्र प्रतिबिम्ब न होतो वह काम पूरा हो नहीं सकेगा। इसलिए मुझे लगता है कि जो वस्तुगत तथ्य है जो समयपर प्रतिफलित दीप्तता है उसको ज्या का त्या हम कहानी में बारीकी के साथ चित्रण कर देते हैं तो मेरे खयाल में इतने मात्र से कहानी सफल नहीं हो जाती। वह सदा साहित्य नहीं बन जाती है। मुझे तो ऐसा लग रहा है कि यह जो पैसा बढ़ रहा है इससे हमारी बुद्धि पनी और प्रखर हो गयी है। इससे जो कुछ भी हम देखते हैं, उसको खण्ड खण्ड, अणु-अणु छितराकर देख लेना चाहते हैं, विश्लेषण बुद्धि से। वह इतना विश्लेषण करती है इतना विश्लेषण करती है कि सश्लेष तत्त्व लगभग रह नहीं जाता। जिसे हम कहते हैं प्रेरणा कहते हैं वह सश्लेष प्रभाव है। विश्लेषण बुद्धि केवल बारीकी में उतर सकती है। किन्तु रस और प्रभाव की अतिवृत्ति उसमें कम हो जायगी। जीवन के साथ कहानी का क्या सम्बन्ध है इस पर जब विचार करता हूँ तो मालूम होता है कि वैज्ञानिक सम्बन्ध नहीं है। कहानी का सम्बन्ध अवश्य जीवन के साथ रोमैण्टिक सम्बन्ध है और रोमैण्टिक सम्बन्ध के माने में कि हम प्रयत्नपूर्वक अन्तर रखते हैं। अन्तर नहीं रखते हैं तो आदर समाप्त हो जाता है मूल्य समाप्त हो जाता है मर्यादा समाप्त हो जाती है। अन्तर रखते हैं तो भावना का अवकाश रहता है। अगर विज्ञान वह है जो सैटीमेट के लिए अवकाश नहीं छोड़ता है तो वह विज्ञान एटम बम बनायेगा और एटम बम को सिर्फ रखे रहने से मनुष्य नहीं हो जायेगा, आगे भी चलेगा। कोई चीज है कि त्रिमूर्ति कारण विज्ञान अपनी मर्यादा में रहता है। जीवन के बारम्बार दृष्टिकोण बना है कि आन्तर आवश्यकता है— जीवनमात्र का जसा स्वाइलजर कहते थे। आन्तर रस मर्यादा जीवन के लिए अमान्य काम नहीं माना। क्योंकि हर चीज में अपूर्णता दिखाई देना है और आदर तिराहित हो जाता है। हर कोई अपने को मानता है और किसी का नहीं मानता है। इस प्रकार समाज चलता नहीं चल सकता नहीं, लेकिन मैं अपने में दूसरे को मानूँ और अपने से अधिक मानूँ यदि ऐसा हो सके तो मैं समझता हूँ कि हमारे जीवन में गति प्राप्त हो जायगी और अन्त में होगा। जीवन उस विज्ञान का स्पर्श दे जो बह्याण्ड तक व्याप्त है और जिस में

रोमांस कहा। विराट के प्रति जो विस्मय का भाव है वह विनान है। साहित्य की यदि कोई उपलब्धि है या उपादयता है तो वह आदमी और आदमी के बीच भ्रमता के सम्बन्ध को प्रतिपाद्य नहीं समझता बल्कि दूसरे प्रकार का सम्बन्ध मानता है—सहानुभूति का। इससे आगे प्रेम का सम्बन्ध है। जब म किसी के निकट भुक्ता है उससे प्रति कृताघता अनुभव करता है उसे प्रथम और अपने को श्रेयम मानता है तो वह प्रेम है। इसी का बड़ा हुआ रूप भक्ति है। साहित्य में जब भक्ति का सत्त्व रहता है तो वह चरमात्म्य पर रहता है। और जितना उसमें तिकन, अहता का भाव रहता है वह अपने प्रयाजन से च्युत हाता है। कहानी के बारे में मुझे लगता है कि साहित्य में कोई रिधा नहीं है जो कहानी के अभाव में टिक सके। कहानी ही थी, उसका रूप बनावट, पहनावा कविता का था। व हमारे पुराण हैं जिन्होंने हमारी सस्कृति की एकता को कायम रखा। उसके मध्य में कहानी जरूर रही है। जो कविता हम प्रभावित करती है उससे मध्य में कहानी की सिचुणान जरूर रहती है। तो भी कुछ भुक्तरु हैं जिनमें कथा का सदभ नहीं है। कथा की इतनी प्रधानता केवल इसलिए है कि जीवन के सम्बन्ध में हमारी मायता स्थिर और बंधकर रह जाये, त्मिग उस वक्त चला करता है। कहानी सस्कार देती है। उसका सशोधन करती है। चलता हुआ जो जीवन व्यवहार है उसका द्वारा सत्य की भाँकी कहानी देती है और वह टिक जाता है। सत्य में, सूत्र में, बंध गया वह तो स्टेटम-का का समथन करनेवाला होता है, जीवन को आगे नहीं बढ़ाता है। उपनिषद का जब परम गुह्य बात कहनी हुई तो उससे पास कथा के अलावा कोई सहारा नहीं था। कथा साहित्य का बड़ी गार्फल्य है कहानीसं बहवात यदि हम मानूम हाजाय जिसे मानूम होना चाहिए, कि जितन भी वाद हैं जितनी मान्यताएँ हैं उनका मापेदय मूय है। मनुष्य उसका मध्य में है जो निरपेक्ष मानव से व्यवहार में अनग जानर मानव-व्यवहार से भ्रमग जाकर, कोई मन्तव्य कोई सूत्र अपना भाव में गत्य हा नहीं करता है। मानव-व्यवहार की बमौटी पर जो टिकता है वह मही है तो में मानता है कि एसा हमारा मनोभाव बन जाय तो साहित्य में, कथा साहित्य में, अपना काम बहुत कुछ पूरा किया। मैंने कहानियाँ लिखी हैं और जब एकाध कहानियाँ छप गयी थी, तो

मैं बहुत उत्सुक रहा कि मैं यह जानू कि कतानी है क्या चीज ! इधर उधर जाता था कि कहानी क्या होती है, मुझे बताइये ! एकाएक जब कुछ कहानियाँ छपी तो किसी ने कहा—छपा हुआ मिला गया पढ़न को, जब मैं धूमता फिरता था दिल्ली में और आदत यह थी, कि जीवन से पराम्त हो चुका था, यहाँ बल बल में आया था, इस आशा से कि दस पाँच रुपये की नहीं नौकरी मिल जाये तो रह जाऊँगा । माँ का सामना नहीं होता था । यह मेरी हालत थी और मैं जानना चाहता था कि कहानी क्या होती है तो उसी समय पत्नेकी छपा हुआ मिला कि कहानी का जानकार जनार्दन है । तब से कहानी का लिखना मेरा चलता रहा है उनमें कोई खाम निश्चित नहीं हुई है, लेकिन यह बात मेरे मन में बंध गयी है कि कहानी का जानना कुछ होता नहीं है । जो कहानी के बारे में इतना जानकार था और वह जगह जगह जाकर पूछता था कि कहानी क्या होती है बनाओ ! और उसी के सम्बन्ध में यह उपा मिल जाता है कि उसके समान जानकार कोई नहीं है, तो सिवा इसके क्या सावित होता है कि कहानी जानने की कोई चीज नहीं है । और उसको भाषा जब जानकारी की भाषा बनायी जाती है और लिखी जाती है तो मैं मानता हूँ कि कहानी पर कुछ अवलोकन आ जाता है । और जब कहानी जानकारी की भाषा से मुक्त होकर जीने की भाषा अपनाकर चलती है तो भरसक हा जाती है सचके लिए सुदम हो जाती है । पश्चिन्के लिए इसी कारण यह गायद गूड हा जाती है । मैं मानता हूँ कि कहानी के सम्बन्ध में परिचर्चा का जो बाड़ा आपने उठाया है वह माहस का काम जरूर है, लेकिन मेरी प्रार्थना और भावना यह है कि कहानी-लेखन की दृष्टि से भी यह समारोह उपयोगी और लाभकारी हुआ ता मैं अपने का आप सच को और समाराह को सफ़्त समझूँगा—जिसकी कि सम्भाजना मुझे कम लिखती है ।

हिन्दी कहानी में यथार्थवाद का विरोध

■ आपके बलकत्ता क्या समागोह में दिये गये भाषण पर हुई प्रतिप्रियाघा से ऐसा आभास होता है जैसे आपने यथाथवा का विरोध किया है। क्या आप इस साहित्य के लिए इष्ट नहीं मानते ?

—जी वाद को साहित्य में मैं ठीक नहीं मानता हूँ। वाद स्थित मत का प्रतीक है। साहित्य में स्थिति से आगे गति की प्रतिष्ठा है। इसलिए किसी भी मनवान् के प्रतिपाद्य के लिए मैं साहित्य में भयकांग नहीं दखता हूँ। फिर यथायवाद की सत्ता तो मुझ और भी सीमित जान पड़ता है।

कहा जाता है कि साहित्य समाज जीवन का दर्पण है। साहित्य के लिए यह स्थिति कि वह बस बाह्य जीवन का प्रतिबिम्ब है मुझे द्राह्य नहीं। आवश्यकता मालूम होता है कि वह उस जीवन का प्रति भी करे। इसलिए मैं मानना चाहता हूँ कि यथावस्थित यथावताओं ने अधिक साहित्य में समावनाओं और बल्पनाओं का प्रतिफलन मिलता है। इसी सत्ता के कारण साहित्य जीवन के लिए प्रेरक भी हो पाता है।

ऐसा मायता रखकर भरे लिए अपने आरंभिक भाषण में यह कहना आवश्यक हो गया कि क्या कि वेपणपूरण बुद्धि से जो रचना होगी यह यथाय को पकड़ने की वागिग में पक्ष पर पक्ष मानते हुए मन में नास्ति पर पदुष जायेगी और उगम समर्पित प्रभाव प्रयोजन की कमी होने लग जायगी। आवश्यकता साहित्य मृजन में सर्वाष्ट आस्था की भी है जो वस्तु को अद्वित और सडित करके हाँ न दम, बल्कि उगवा अलड के सम्म में सौम्य से मंडित

करके भी देख सके। इसको यथायथा ग्रहणी स अधिक सत्य-आग्रही दृष्टि कह सकते हैं। यथायथा के आग्रह में सौंदर्य छिन्न भिन्न हो जाता है। वस्तु की अनेकता वेहद उभर पड़ती है। जैसे मानो सब कुछ परस्पर को व्यथ करता हुआ सिफ कटा फटा हो। साहित्य वस्तु की अनेकता में से अपनावृत्त दृश्य एवं दृग्गण का एकता स्रष्ट करता है। इसमें द्रष्टा और दृश्य के बीच मानो इतना प्रंतर रहने दिया जाता है कि दृष्टि काम कर सके और वही मौन्य का आविष्कार कर सके। चित्र स आल सटाकर रखेंगे तो उसका सौंदर्य समाप्त हो जायगा। वर्ण रंग के धब्बे भर रह जायंगे। भाव और अर्थ वहाँ से तमाम लुप्त हो चुका होगा। आज वैज्ञानिक एवं औद्योगिक युग के प्रभाव में कुछ ऐसी ही घटना घटती दिखाई दे रही है। अति बौद्धिकता का जोर है वस्तु और व्यक्ति के बीच का अन्तर यथायथादी आग्रह के कारण विलीन सा हुआ जा रहा है। मुझे कहना हुआ था कि इस युग में वाक्य की जो मांग घट रही है, भाषा का स्थान अवगणनीय बन रहा है सा स्वाधनीय नहीं है। मुझे आवश्यक् मानूँ तो है कि वस्तु से वास्तव का अंतर देखा जाय और रोमांटिक व्यक्ति को तनिक फिर से अपनाया जाय। वसी तटस्थता और निरपक्षता के बिना वस्तु जगत का आशय पकड़ में नहीं आवेगा। बल्कि वह वस्तु-जगत ही हमका पकड़ लगा और इस प्रकार साहित्य वस्तु म्बिति को संभाले रखने वाली साधनानि का अनुकूलता मात्र रह जायगा उसका मागदंगक एवं दिग्गक नहीं हो सकेगा।

आज वैज्ञानिक बुद्धि के वर्णवर्ती होकर हम गणना में पम गये हैं। वह गणन-शक्ति हरेण को एक दूसरे में अलग कर देती है। प्रत्येक पथक और घटक हो जाता है किन्तु सब अलग अलग होत के लिए ही नहीं हैं। उनके बीच में व्याप्त एकता का मूल है जो अमोघ है। साहित्य उसी अमाध अनिवाय यद्यपि अग्रयत। तत्त्व की आस्था रखता और उसकी प्रतिष्ठा करता है। अन्व के बीच वह ऐक्य का उद्घाटन करता है। यही ऐक्य है वह पष्ट सत्य जो यथायथा की सच्ची यथायथा दत्ता है। नहीं ता यथायथा स्पष्टा प्राम्पट्टा से भरा एक उलभाय मात्र रह जाता है और उसमें हर स्वयं इतना प्रपात बन जाता है कि वह सब-

स्व को खा डालना चाहता है। इसी दृष्टि का परिणाम है कि सघन सय कही दीगता है और सौमनस्य का अभाव सा हुआ जा रहा है।

इसलिए आरम्भ में ही मैंने यथायवाद के प्रति अपनी दृष्टि अपना यथा प्रगट की थी और आस्था का आवश्यकता का समयन किया था।

यह आज की सभ्यता और विश्व की मानसिकता के प्रवाह को देखते हुए मैंने कहा था। मुझे डर है कि हिंदी तथा क्षेत्र में नये पुराने गानों की लहर जो यथा विवाद की स्थिति पदा कर डाली गई है, उनके सन्ध में उन वाक्यों का तन्त्रिया गया और फिर गायन उसके प्रति दुलधा हा हो गया। मेरे मन में उन नयी पुगनी सनाआ के लिए स्थान कभी नहीं रहा न अग्र है। मैं मानता हूँ कि उनके सहारे चतकर साहित्य के मूल्य विणय के सन्ध में कोई प्रवाण मिलन वाता नहीं है।

■ आपन जो सन्निवृष्टि दृष्टि की बात कही वह ता ठीक है किन्तु विज्ञान में इस युग में गणक हुए बिना निता गया साहित्य पाठक को विभ्रमिन ही नही करगा ? — विक्षेपक और विवेकक बुद्धि को साक पर रखकर साहित्य निम्ना जा सवेगा यह मैं कस कह सकता हूँ। लेकिन हाँ विज्ञान और अनुमान से इतर यदि राजा में उमका उपयोग हागा ता उम बुद्धि का भावना की आवश्यकता होगा। एक गान प्रतिबद्धता आज कल घना करता है। आस्था के अभाव में प्रतिबद्धता सभव नहीं है। यदि यह प्रतिबद्धता आत्मगन विल्कुल न हा सयथा वस्तुगत हो जाय ता साहित्य समाप्त हो जाता है सिफ राज कारण हाय में रह जाना है। तब बढ़ा बढ़ी और आपाधापी आदि का प्रवेण साहित्य को घट जाता है। हरक के लिए यदि अपना अपना स्व और स्वाय ही यथाय हो जाना है ता फिर बाच में से उनके प्रेम तिराहित हो जाता है। साहित्य का सचस्य उन सबके बाच का प्रेम ही है वहा उसना यथाय भी है। गवका अपना चित्रण और विरुद्ध स्व और स्वय साहित्य के निग मिथ्याय बन रता है। साहित्य और राजनीति में यही अंतर है। इसलिए वह दृष्टि जो स्वय को और स्वाय का निगा एक परमाय में मिना-जुता अभिन्न दस्तती है, इन दुनिया में किंचित् रोमाटिक दृष्टि समझ ली जाना है। वह लिया जाय उस रोमाटिक

लेकिन अतन्त्र म स्तदृष्टि भी वह ही है। इस दृष्टि को अपनाते में बुद्धि के लिए भरपूर पुष्टपाथ का अवकाश रहता है। सच पूछिये तो उस बुद्धि के साथ सही सही यात्रे तभी हो पाता है जब वह उस आस्था से अपना समाजस्य विठाने का निरन्तर प्रयास करती रहती है। अथवा आस्थाहीन बुद्धि तो निरी अहकृत हो जाती है और निन्दा आलोचना का या काटने कुतरने का ही उसका एक काम रह जाता है। वह रचना निर्माण में फिर समय नहीं हो पाती है।

✽ इसका अर्थ यह हुआ कि आप साहित्य में जो यथार्थवाद आज चल निवना है, उसे आस्थाहीन बुद्धिजय मानते हैं और यह भी कि वह घटिया है। यहा साहित्य की परिभाषा का प्रश्न उभरता है जिस पर कलकत्ता कथा समारोह में बहस हुई थी। क्या साहित्य की परिभाषा भी समय समय पर बदलती रहनी चाहिए। कलकत्ता कथासमारोह की इस दिशा में क्या उपलब्धि रही?

—हाँ यथार्थवाद जो कहा जाता है प्रकृतवाद तक पहुँच गया सो शायद इमा आस्था च्युत बुद्धि प्रयोग के कारण।

मैं यथार्थ शब्द को सत्य में मिलाकर खो देना चाहता हूँ। ऐस यथार्थ वस्तुता और वास्तवता में मुक्त होकर अन्तरगता और आत्मता से अपनी सधि स्थापित कर लेता हूँ। ऐसे आन्तरिक और आत्मिक में अन्तर्भाव स्थापित हो जाता है एक समन्वित समुक्त इतिहास वास्तविकता अथवा सत्ता के प्रति उन्मुखता प्राप्त होती है। यथार्थ शब्द अपना आप में आत्मता से जो अछूता रह जाता है सो उसी मात्रा में अवास्तविक भी बन जाता है। इसी से स्थिति अनिवायतया यह बनी और आगे भी बन सकती है, कि यथार्थ के बाद में से प्रकृतवाद या अन्तर्भाव जन्म ले निकले।

नहीं, विचार के उस स्तर पर कलकत्ता के कथा-समारोह में कोई उपलब्धि नहीं हुई। एन बहूत संकरे दायरे में बातें चलती रही और वहाँ जो कुछ हुआ उसमें काफी तो मेरे लिए अगम बना रह गया। कुछ अन्तर्गत चर्चा भी रहा जितना सावजनिक महत्त्व नहीं बनना या मानना चाहिए।

कलकत्ते का यह कथा समारोह सस्कृति-संसद की ओर हुआ था। उनका प्रयत्न सचाइ के साथ उच्च कथा समारोह को पूरी तरह सफल और समग्र और

प्रतिनिध्यात्मक बनाने का था। यदि वह बसा नहीं हो सका कुछ एकांगी बन गया तो कारण कुछ अथवा अथवा अथवा रहे होंगे। लेकिन इन नपथ्यकी बाता का न मुझे परिचिति है न चिन्ता है। इन और एने समारोहों में साहित्यतर वातावरण बन ही गया करता है। मेरी वहा जानेकी रुचि अथवा वृत्ति नहीं थी। बार्स तारीख तक मैं निश्चित जानता था कि मैं नहीं जा रहा हूँ। बीच के डेढ दिन मैं कुछ गमा धिर गया कि अत मे मैंने अपने को बलवत्ते में पाया। यह निस्सन्देह बड़ा सफरता है कि अतने ही ली-कथा में सबध रखने वाला लाग वहाँ उपस्थित हो सकें। सभी क्या धराया विराया वे बघु थे। उससे वातावरण निमी निश्चित स्तर का नहीं बन सका। मालूम हाता है ऐने सयोजना में विस्तार क लोभ ता सवरण अधिक उपवागी होगा। यह मैं नहीं मानता कि खुनवर वार्ते हो सकें तो उसस अनिष्ट होता है। यह भी कि न वहाँ आपस का मोगालिय था न पदा हुआ। बुद्धेन अप्रियताआ नी छात्रवर मतभद वहाँ मानसिक और वचारिक था जा स्वाभाविक और उचित है।

कथा लेखवा न कथा मीमासा के अवसर पर अपेक्षा रखी जा सकती है कि वे कितानी भाषा में बात बम करेंगे जिसमें भारी भरकम गान वेह्ट आ जाते हैं। यान कुछ निजी और घरेलू भाषा में का जायगी जिसमें ता परस्परपल्धि हो सके। शास्त्रीय गब्दा में की जानेवाली घर्चा किचित परीक्ष और सुग ता-त्मक बन जाती है। उसपर स रिपाट तो अच्छी बनती है निष्पत्ति बम हाती है। समझमें नहीं आता कि कहानी लेखक कितानी भाषा का विवगता में क्या पढता है। वहाँ बहूत-बुद्ध ऐगा मुनन को मिला जो बकवृत्व का कोटि तक उठा हुआ था और आपसीपा से अछूता था। मरे लिए यन् अगम बना रह गया और विचारणीय नहीं हो सता।

प्रतिक्रियाएँ वहाँ की क्या हूद मुझे पूरा पता नहीं है। एकाध जगह कुछ उन वारे में छाता अवश्य पड़ा है। यह सही है कि हवा उससे साफ नहा बनी। घुध कुछ अधिक बढ़ गया। जो गान विचार का सुलभाने में बजाय उलभा रहे थे उनपर ध्यान उलटे बढ़ा और उभरा। नये पर जाार रहा, जो अपने आप पुरान पर भी पढना बसा गया। मुझे अपने वारे में मुनन को मिला कि

प्रेमचंद के समय के कहानी के साथ जो मन ताड़ा था। यह निरा अपवाद है। मैंने सिवा अपने जसा लिखने के कुछ और नहीं किया। प्रेमचंद को तनिक भी कभी मैंने अस्वीकार नहीं किया। अपने का स्वीकार करने में किसी का अस्वीकार मेरे लिए आवश्यक या उचित नहीं बना। बल्कि उलटे मैंने यह अनुभव किया है कि अपने सहज स्वीकार अर्थात् अपनी मयादाजा के स्वीकार में शेष सबका सत्कार अपने आप आ जाता है। किसी व्यक्ति या पीढ़ी का अस्वीकार जब भी मन में उठ तो मान लेना चाहिए कि हमने निश्चल आत्म-स्वीकारता की प्रक्रिया अभी अपूर्ण रह गयी है। हमारे मन में अमुक प्रथिया काम करने लग जाती है। प्रथि बनने का कारण केवल अपनी निश्चल स्वीकृति का अभाव ही होता है। अमुक अभिनिवेश या आग्रह या आक्रमण उसी में से पनित होते हैं। यदि ऐसा होता हुआ कहीं पीछे पड़े तो उसको मुनना और सहन कर लेना चाहिए और कभी उसको महत्व नहीं देना चाहिए। वैसे मन-स्थिति में से निकले सब उदगार व्यक्ति को प्रगट करते हैं साहित्यिक मूल्य विचार से वे निरपेक्ष हुआ करते हैं। ऐसी लहरें तात्कालिक स्तर पर हमेशा चलती आयी है। तत्काल से आगे उनकी कोई सगति नहीं रह जाती है। लेकिन इस सब में अधिक चिंतित होने की आवश्यकता नहीं है। प्रत्येक द्वारा सृष्ट साहित्यही पीछे रह जायगा वादानुवादपूजा नहीं जायगा। कलकत्ता कथा समारोह का बहुत कुछ है जो टिकेगा नहीं भूल जायगा और खोजायगा। इतना भर रह जायगा कि सब लोग मिल और अपने अपने मन का प्रकाशन किया और मन में इस मात्रा में सौमनस्य बढ़ा। और मैं मानता हूँ कि मुझे निजी तौर पर इस अर्थ में काफी लाभ हुआ। मेरे निकट आविष्कार हुआ कि भाई परसाई और श्रीवात वर्मा इतनी साफ सीधी खिलती और चुम्की भाषा में अपनी बात कह सकते हैं। डाक्टर गिवप्रसाद और डा० लक्ष्मी नारायण लाल की बातें भी मुझे हार्दिक और स्पष्ट लगीं। भीष्म साहनी लगभग नहीं बोले किन्तु जितने शब्द धाय मिठास में से आये। बृन्गवनलाल जी, भगवतीबाबू और मधुतलाल नागर से तो अधिकार ही था कि हम अनुभव सिद्ध बाणी के अतिरिक्त कुछ न मुन सकें। शेष मेरे मनमें प्रपक्षा बनी रह गयी कि बात यदि हृदय की भाषा

समझ लेना चाहता है। समझकर क्या वे पा सके, या दे सके हैं, पता नहीं। लेकिन मैं उस लालसा में कोई समुपलब्धि की संभावना नहीं देखता। मुझे नहीं मालूम, इस सब में अखबारों में क्या छपा है। लेकिन जो बात मेरी धार से कही गई थी, वह सीधे सादे ढंग में ऊपर धा जाती है।

■ क्या उक्त प्रश्न पर समारोह में मीमांसा हुई? मोहन रावेश और कमलेश्वर के बक्तव्यों पर आपका क्या मत है?

—शायद उन वाक्यों को व्यक्तिगत आक्रोश और आक्षेप के रूप में समझकर टाल लिया गया। मेरे मन में यकित वे ही नहीं। मेरे मन में कबल मूलमूल प्रश्न था। इसलिये यह चर्चा प्रसंगवश ही उठ आई थी। दो एक बक्तव्यों में कह दिया गया था कि हिन्दी कहानी में आधुनिकता जनेन्द्र से शुरू हुई। यह भी कि जनेन्द्र लेखक आधुनिक है। इसी पर हठात् उठकर मुझे कहना पड़ा कि मैं इस अभियोग को अस्वीकार करता हूँ (आई प्लोड नोट मिल्टी)। जनेन्द्र किसी हालत में आधुनिक लेखक नहीं हो सकता है, न उस आधुनिक होना मजूर है। आधुनिक जीवन का बहुत बड़ा क्षेत्र ऐसा है जिसका अनुभव मैं वह बचित है। इस अनुभव की पूँजी की कमी पर यदि कोई चिंतित नहीं है तो वह आधुनिक कस मान लिया जा सकता है?

इसी वचाव में मैंने अपने अंतिम वाक्य में कहा था कि साठ बरस आयु के हाँचुके पर भी अगर जनेन्द्र आधुनिक लगना करता है तो क्या बीस-तीस के उमर के लेखक धाय मानते हैं भ्रम ही मारते हैं? इसका भाग्य था कि आधुनिक और उसी ढोड में प्राचीनता धादि ढग्ला के सहारे जनेन्द्र का काम नहीं चला है। खामबर आधुनिक मतवाल् की कसौती से रि जिसका चलन है, यह एक्दम उतरा हुआ है। उसकी बहानियाँ वस्तुगत अनुभव की सष्टि से सच्ची नहीं हैं उनरी सचाई यदि है तो निष्ठागत है। स्पष्ट ही वे मडन हैं।

उक्त मेरे मतव्य को व्यक्तिगत भूमिका देकर उद्गम का कारण बन जाने दिया गया विचार विवचन के स्तर से उस धरंग धनग रङ्ग जाने लिया गया, इस पर मुझे रोना रहा और अब भी सत है। हमारे एक नना वधु जा या दिगगण हैं उनके गारे आगय में धरूने वो रह गये और भ्रम तक पडे।

हिन्दी-कहानी पथार्यवाद का विरोध

इसी से समारोह के उत्सव वातावरण की कल्पना की जा सकती है।

श्री माहन रावेश और श्री कमलेश्वर के बक्तव्य सभ्रमयुक्त और विद्वज्जनोंचित थे। मुझे स्वीकार करना चाहिए कि वे मेरी कक्षा से उंचे थे।

मुझे अनुभव हुआ कि मैं उतना पढा लिखा नहीं हूँ।

श्री राज व कहानी लेखन में आप क्या संभावनाएँ पाते हैं ?

—संभावनाएँ ! संभावनाएँ तो बड़ी उज्ज्वल मालूम होती हैं। डर यही है कि हिन्दी का क्षेत्र बढ रहा है और बाजार भी बढ रहा है। इसलिए उस धूम-धाम और बोलाहूँ में गुण अनपहचाना और पिछड़ा रह जा सकता है। लेकिन हर सचार्ड को इस परीक्षा में से तो गुजरना ही होता है। इसलिए व्यग्र प्रयत्न निरन्तर होने की आवश्यकता नहीं है।

कहानी के क्षेत्र में बहुत तेजी से और बहुत दिशाओं में काम हो रहा है। उस सबका लेखा-जोखा तो मैं नहीं दे सकता हूँ। तो भी काफी कुछ निगाहा से गुजरता है और अपने को अत्याधुनिक से अद्यतन रखन की भी वाशिस करता हूँ। इस प्रयत्न में तीन नाम सहमा मन पर अंकित होकर उभर आये

— निमल वर्मा की कहानियाँ की पकड़ से मैं बच नहीं सका हूँ। उपा प्रियदा की रचनाएँ समहीन कभी भनने नहीं पाईं। उनमें सगोपन और साकेतिकता भरपूर मिलती है। इपर मनहर चौहान का एक सप्रह देखने को मिला। क्या बहने की सहजता, साथ ही सवेदन की समता और सूक्ष्मता मुझे बहुत प्रभावोत्पन्न लगी। याद पडता है, गोहन रावेश की रचनाएँ की छाप मुक पर

गहरी पडी थी। इपर वह अपेक्षया अवश्य कुछ भूखी-सी रह जाती है। अतीव नया मैं कोई नाम उतना अभी पचना तो नहीं बन सका है लेकिन एफ ताजगी अवसर देखन में आती है। कुन मिलानर बहून कीमती काम हा रहा है और हिन्दी में निश्चय हा कहानी व स्तर की तुलना किन्ती भी भारतीय भाषा बल्कि

अनेक विदेशी भाषाओं की तुलना में हल्की नहीं बैठती। भारतवर्ष में नई से नई तरह का रूप भी मिलता है और प्राचीन परंपरा की जड़ भी यहाँ में अभी उल्टी नहीं हैं। इस तरह अत्यंत गहन और सपन भाव मयन की मामूली भारतीय जीवन में मान उत्पत्ति है। रूप देन का वह माता जय बहूँ एक

साथ तुगनेव, टान्स्टाय, दास्तोविस्की और गोर्की-जैसे दिग्गज उदय म छाये, मानो संप्रति भारत भोग रहा है। यहाँ की राजनीति शिथिल और स्थितिगोल जो बनती जा रही है सो आशा है कि उसकी क्षतिपूर्ति साहित्य द्वारा होगी। ऐसा ही होता है और सचमुच उसकी चिनगारी जहाँ-तहाँ कहीं कहीं दीख जाया करती है।

• • •

वक्तव्य

अभी एक पत्रिका में कुछ प्रतिक्रियाएँ पढ़ने का मिली । बलरुत्ते म कथा-समाराह हुमा था और उसी के परिणाम मे वे उपजी हैं । उमने मुझे चिंता में डाल लिया है । मैं अपने को अहिंसा का विश्वासी मानता हूँ । मानता हूँ कि यहाँ हर प्रकार के जीवन को खिलने खुलने का अवसर मिलना चाहिए, लेकिन उस पत्रिका म मान्य होता है कि काफी कुछ अनिष्ट भाव मुझको और मेरे वक्तव्या को लेकर जमे और भव जीवन क सौमनस्य को वे नष्ट भ्रष्ट कर रहे हैं ।

इससे लिखे शब्द की अपेक्षा म बोले गए शब्द की उपयोगिता अनुपयोगिता के बारे म ममन चल निकला है । लिखा गया शब्द समूह के भीड़ के, पास नहीं जाता । वह एक एक पढ़न वाले के पास पहुँचता है और हठात् नहीं पहुँचता, यागी वह उसके अस्तित्व को टक्कर नहीं देता । पढ़न वाले में भाग होनी है, प्रत्यूत्पीलता होनी है और तब लिखे हुए शब्द के द्वारा लेखक की बात उम तक पहुँचती है । दोनों म विचित परस्परोन्मुखता बन चुकी होती है । हो सकता है कि लेखक का शब्द और भाव पाठक के मन के और मत के अनुकूल न हो । चाहे तो वह प्रतिकूल ही पठ जाता हा । तो भी पाठक के अस्तित्व का क्या लखक के शब्द से यदि कुछ चुनौती मिलती भी है, तो वह उनकी मानसिकता का मिलती है । इस पद्धति से साहित्य के शब्द का प्रभाव एक एन की मानसिकता का जगाता, चौकाता या डेनना हुमा व्यापक बनता जाता है । उगका परिणाम चेतन उद्घोषन की दृष्टि से इसलिए अतभीष्ट नहीं हाना । साहित्य के शब्द ने काफी हलचल और उचल-पुचल भी

मचा दी है लेकिन यह आलोडन मानसिकता के स्तर पर होने के कारण अन्ततः जीवन साधक ही होता है। वह मथन जीवन के नवनीत को ऊपर लाता है और कुल मिला कर चतय को प्रकय और उत्कय देने वाला बन जाता है।

लिखा हुआ शब्द किसी के सिर पर जाकर नहीं पडता। आप नहीं पडना चाहते है तो नहीं पडते हैं। पडते पडते अरुचि स ऊब जात है तो छोड देते है। यह सुविधा मच से बोले हुए शब्द म नहीं रहती। वह हठात आप पर पडता है और आपसे टकराता है। आपम उसकी मांग नहीं है। पर अगर बडे हैं तो उससे बचने का उपाय भी आपवे पास नही है। मच से बोला गया शब्द आप पर पडता है। आपसे बात नहीं की जा रही है आप पर वह गाली जा रही है और इस तरह उराम खतरा पदा हो जाता है कि आपके अस्तित्व और व्यक्तित्व को यह ड्रेड पड जबकि आपकी मानसिकता सबया उससे अछूती ही बनी रह जाती है। उसकी घाट ग्रहता को लगे और वे शब्द ही लेखक, पाठक के सबध से विरुद्ध वक्ता होता म एक प्रकार की घनास्मीयता पैदा करने वाले बन जाय। वे शब्द ऐसी लहरें उठायें जिनसे विग्रह बने और आवेग उत्पन्न हो। मच से बान गए शब्द व्यक्ति के प्रति नहीं जाते समूह और भीड से कहे जाते हैं। इसलिए उनके अर्थ भी अलग भन्ग तरह से लिये जाते हैं। तात्कालिक मनोभावा का ही उन घषों या भनयों पर असर पड सयता है। इस तरह मच पर स गेता गया शब्द व्यक्तिगत अनुबध स निरपेक्ष हो जाता है और वह चतय का उपकरण नहीं रहता बल्कि समूह क आवेगो अभिनियेगा क काम आन लगता है। उसन इस कारण साम्युक्तिक प्रयोजन सिद्ध नहीं होता अधिकांश राजनीतिक परिणाम निकाला जाता है। सामुदायिक आवेग और अभिनियेग राजनीति म गर्मी लाते हैं और हम इस पद्धति मे उसे उभारते हैं। राजनीति मे व्यक्ति गौण हो जाता है गुट गणनाय बनते हैं। इसलिए राजनीति का मेल अन्तश्चतय को उदबुद्ध करनेवासा नहीं हुआ करता है अधिकांश मोहाविष्ट करता है और व्यक्ति की आरम निभरता को बह कम करता है। वह सगठन का माध्यम बनता है और उद्वोधन के माग म अकसर रकावट बन जाता है।

सासकर वह मच, जहाँ वक्ता-श्रोता के बीच केवल प्रहणशीलता का सम्बन्ध न हो, बल्कि वह मच बाद विवाद का हो ।

मैं इस बार मेअव तक असावधान रहता आया हूँ । मचा पर जाने और समूह क प्रति बोलने म अिभ्रमना नहीं हूँ । अब मालूम होता है, अिभ्रमने की आवश्यकता है । आवश्यकता इसलिए है कि लिखे हुए शब्द का भी उपयोग मैं करता हूँ । लिखा शब्द समूह को स्वाकार नहीं करता, व्यक्ति से वह व्यक्ति को आता है और जिसके लिए सम्यक् व्यक्ति हो उस जमाव के प्रति बोलने में कठिनाई होनी चाहिए । छोटी मोटी गोष्ठी तो भी चल सकता है । कारण, उस गोष्ठी म मानो एक व्यक्तित्व का निमाण हा आना है । खुले जमाव में वह शक्यता नहीं रहती, इसलिए वहाँ का शब्द स्मिर्वि निरपरा और व्यक्ति निरपरा हा चकता है और प्रप का अनप पैदा कर देता है ।

गर सोच में इसलिए मुझे घब पड जाना पडा है । सुनता था कि लेखक अच्छे वक्ता नहीं हान । अबतक इसका सगति मुझे समझ नहीं आती । अब मालूम होता है कि लेखक को वक्ता हाना भी नहीं चाहिए । यदि वक्ता वह सफा हो तो शायद लेखकी पर उसका दुष्प्रभाव पडे विना नहीं रहेगा । बालने म तात्कालिक प्रभाव की अपेक्षा भी जुड जाती है । लिखने से भी उसका योग हो जाता है तो उसमें कृत्रिमता आने को समावना है । लेखन आत्माभिव्यक्ति है । जितनी वह अपने प्रति सच्ची होगी उतना दूसरे के अतरग का छुएगी । अगर वाह्य प्रभाव की आसक्ति उसम आ मिलती है तो उसकी अतरगता विचिन अहना से कसुपित होती है । वह फिर सच्ची नहीं रह जाती है । लेखक का इसकी थोड़ा सुविधा भी इस कारण रहती है कि वह अकेला होकर सिखता है, काई श्रोता-वग उसक समझ नहीं रहता । उसे अपने से जूमना पडता है । और लिखने के द्वारा मानो वह अतत अपने से ही सामजस्य साधना चाहता है । फला श्रोता-वग उसके सामने हो तो उसक मनाभाव विचलित हो सकते हैं और अपनी ही मम भूमिका से च्युत होकर वह तात्कालिक और लौकिक प्रयोजना म वह जा सकता है ।

मादमी अपनी ही भावना में अब अतरता है तो आमसुद्धि की ओर बढ़ता है ।

मचा दी है लेकिन यह झालोडन मानसिकता के स्तर पर होन के कारण अन्तत जीवन साधक ही होता है। वह मथन जीवन के नवनीत को ऊपर लाता है और कुल मिला कर चतय को प्रकय और उत्कय देने वाला बन जाता है।

लिखा हुआ गब्ब किसी के सिर पर जाकर नहीं पडता। आप नहीं पडना चाहते है तो नहीं पडते हैं। पडते पडते भरचि स ऊब जाते है तो छोड देत हैं। यह सुविधा मच स वाले हुए गब्ब म नहीं रहती। वह हठात आप पर पन्ता है और आपसे टकराता है। आपम उसकी माग नहीं है। पर अगर बठ हैं तो उससे बचने का उपाय भी आपके पास नहीं है। मच से बोला गया शब्ब आप पर पडता है। आपसे बान नहीं की जा रही है आप पर वह डाली जा रही है और इस तरह उसम खतरा पैदा हो जाता है कि आपके अस्तित्व और व्यक्तित्व को वह छेड पडे जबकि आपकी मानसिकता सबया उससे अछूती हा बनी रह जाती है। उसकी घाट ग्रहता को लगे और वे शब्ब ही लखक पाठक क सबध से विफड बक्ता थोता मे एक प्रकार की धनारमायता पैदा करने वाले बन जाय। वे शब्ब ऐसी लहरें उठायें जिनसे विग्रह बडे और आवेग उत्पन्न हा। मच स बोल गए गब्ब व्यक्ति के प्रति नहीं जाते समूह और भीड स वहे गाते हैं। इसलिए उनके अप भी अलग मनग तरह से लिये जाते हैं। तात्कालिक मनोभावा का ही उन घषों या अनघों पर असर पड सयता है। इस तरह मच पर स बोला गया शब्ब व्यक्तिगत अनुसय से निरपेक्ष हो जाता है और वह चतय का उपकरण नहीं रहता बल्कि समूह के आवधा अभिनिवेग क काम आग लगता है। उसमे इस कारण सांस्कृतिक प्रयोजन सिद्ध नहीं होता अधिकांग राजनीतिक परिणाम निवाला जाता है। सामुन्धियर आवेग और अभिनिवेग राज नीति म गर्मी लाने हैं और हम इस पद्धति से उसे उभारने हैं। राजनीति म व्यक्ति गोल हो जाता है, गुट गणनीय बनते हैं। इसलिए राजनीति का संल अस्तवचतय को उदबुद्ध करनेवाला नहीं हुआ करता है अधिकांग मोहाविष्ट करता है और व्यक्ति की आरम निभरता को बट कम करता है। यह समठन का माध्यम बनता है और उद्बोधन के माग म अशगर रथावट बन जाता है।

सासकर वह मन्त्र, जहाँ वक्ता-श्रोता के बीच केवल प्रह्लाणशीलता का संबन्ध न हो, बल्कि वह मन्त्र वाद-विवाद का हो ।

मैं इस बारे में अब तक असावधान रहता आया हूँ । मन्त्रों पर जाने और समूह के प्रति बोलने में भिन्नता नहीं है । अब मालूम होता है भिन्नत्व की आवश्यकता है । आवश्यकता इसलिए है कि लिखे हुए शब्द का भी उपयोग मैं करता हूँ । लिखा शब्द समूह को स्वीकार नहीं करता, व्यक्ति से वह व्यक्ति को जाता है और जिसके लिए समस्त व्यक्ति हैं उसे जमाव के प्रति बोलने में कठिनाई होनी चाहिए । छोटी मोटी गांठी तो भी चल सकता है । कारण, उम गांठी में मानो एक व्यक्तित्व का निर्माण हो आता है । खुले जमाव में वह शक्ति नहीं रहती, इसलिए वहाँ का शब्द स्थिति निरपेक्ष और व्यक्ति निरपेक्ष हो चलता है और अर्थ का अनर्थ पैदा कर देता है ।

गहरे मोच में इसलिए मुझे अब पड जाना पडा है । सुनता था कि लेखक अच्छे वक्ता नहीं होते । अबतक इसकी सगति मुझे समझ नहीं आनी । अब मालूम होता है कि लेखक को वक्ता होना भी नहीं चाहिए । यदि वक्ता वह सफल हो तो 'गाम' लेखकी पर उसका दुष्प्रभाव पड़े बिना नहीं रहेगा । बोलने में तात्कालिक प्रभाव की अपेक्षा भी जुड़ जाती है । लिखने से भी उसका योग हो जाता है तो उसमें कृत्रिमता आने की संभावना है । लेखन आत्माभिव्यक्ति है । जितनी वह अपने प्रति सच्ची होगी उतना दूसरे के अंतरण को छुएगी । अगर वाह्य प्रभाव की आसक्ति उसमें आ मिलती है, तो उसकी अंतरणता किंचित अहता से कसुपिन होता है । वह फिर सच्ची नहीं रह जाती है । लेखक का इसकी थोड़ी मुविधा भी इस कारण रहती है कि वह अपने होकर सिद्धता है कोई श्रोता वग उससे समझ नहीं रहता । उसे अपने से जूमना पडता है । और लिखने के द्वारा मानो वह अंतरण अपने से ही सामजस्य साधना चाहता है । फँसा श्रोता-वग उसका सामने हो तो उसके मनोभाव बिचलित हो सकते हैं और अपनी ही मम भूमिका से च्युत होकर वह तात्कालिक और लौकिक प्रयात्रना में बह जा सकता है ।

आदमी अपनी ही भावना में अब अंतरता है तो आत्मगुडि की ओर बढ़ता है ।

लेखन इसमें सहायक होता है और कोई ऐसा नहीं है जो सबथा शुद्ध और निमल हो। इसलिए बाहर आकर वे लोग अधिक सफल होते हैं जा हार्दिक से अधिक कुशल होते हैं। हार्दिक जसा का तसा प्रगट हो सकता है। कुशल वह है जो अपने ही अनभीष्ट को पीछे रोक रख सकता है और केवल अभीष्ट का ही सामने लाता है। कि तु कुशल व्यक्ति अपने अनभीष्ट को पीछे रखकर चलने की क्षमता के आधार पर इसलिए घाटे में रह जाता है कि वह उस अनिष्ट तत्व से मुक्त होने की चिंता से बच जाता है। ऐसे दुमूही व्यक्ति बनने की सभावना रहती है। दा खाने बन सकते हैं जिनमें हम अपने भातर बटे हैं। शिष्ट मामने आने के लिए और नेप पीछे बचे रह जान क लिए। सख होकर किसी के लिए यह संभव नहीं रह जाता है और नहीं रह जाना चाहिए कि वह दो रानों में बटा हुआ जीये चला जाय। उसे अविभक्तता चाहिए कि फिर लौकिक सफलता चाहे उससे हटती ही क्या न चली जाय। इस तरह अवसर देखा गया है कि लेखक जो कामलतम भावों की अभिव्यक्ति अपने लेखन में कर पाता है प्रत्यक्ष जीवन में वही अनगड और फूटड दीखता है। उदात्त अनुदार दीखन में आता है और आदर्शोपम कृपण बन आता है। यह केवल इसलिए कि अपने अनिष्ट भाव को केवल पिछवाड़े रखकर ही जीने की कला उग नहीं आती है। भावना में उतरकर जब वह लेखन-काय करता है तब अवश्य वह अनिष्ट वहाँ उपस्थित होने के लिए नहीं आ पाता। इस तरह उसका रचना भव्य से भव्य तर होता चली जाती है और वह अपने बहिरंग में उबड और अव्यवगरी बना रहता है। अपने इस अनावधान बहिरंग को लेकर उस बाहर जाना और जीना पहना है और अंतरंग को दुगाई नहीं कर सकता। इसलिए अच्छा है कि वह अपने और बाहर व्यापक सामुदायिक संपर्कों से वह बच।

पर हम सबके बाह में अपने का लेकर गाचता हूँ। सख में बना तो अपना बावजूद। लेखक के स्वयंसेवक के बारे में मैं अभी सावधान नहीं रहा। निता तो बहुत कम और जो मन में आया। लेखक की एक श्रणा हाता है। उसका अपना एक स्थान और भूमिका होना है। मानूँ हाता है कि उसपर टिककर रहने का अवसर मरे लिए आया नहीं। आवारा था, आवारा बना

रह गया और साचता है कि अगर बाहरी सम्पर्कों की कमी से बचकर, अपने में रहकर कलम चलाये जाता है तो फिर अपने दोष उघडकर उजागर सामने आयेगे क्ये ? मानव सम्बन्ध और सम्पर्कों में व्यक्ति की वास्तविकता नहीं हो सकती है। मानो वह दण्ड है जहां आदमी अपने को देव्य सकता है। मन में अपने को जो चाहे मान सकता है पर जा हूँ वह तो मुझमें अन्तर पर प्रभावित प्रगट हो आता है। इसलिए क्या मुझे सचमुच चाहिए कि यहाँ से दूरकर मैं कोई कृत्रिम एकांत बनाकर अपने में लिख बैठूँ कि जहाँ आदमी की कसौटी है और फिर जहाँ ही उसकी मुक्ति भी है। आदमी नहीं है मुक्त अपने में। न हो ऐसे मुक्त हो सकता है। उसकी मुक्ति है अनिर्वन्ध प्रेम-सम्बन्ध में। मुक्ति है इसमें कि वह सबके प्रति समर्पित हो और वर विरोध का आवश्यकता उसके लिए कहीं रह न जाय। कुछ न बचे जो उसे अनात्मिक हो। न कुछ रह जिससे उसे भय या आशंका की आवश्यकता हो। अपने को लेकर सत्य होने के लिए वह बढ निकले। कहीं उसे अंतराय न रह जाय, न कहीं उसके अपनेपन को बढ हाना पड़े।

लेखक राफ़ल शायद वह हो सकता है जो भागता म रहे और इसलिए शुद्धतम और सूक्ष्मतम रूप पकड़ता जाय। ऐसे वह स्वल्पतम भी होता जायगा। वह एक बनेगा और एकाकी बनेगा। शायद इसमें वह अनात्मिक भी बन जाय। हो जाने में विक्षिप्तता के निकट ही पहुँच जाय। वह भावुक होता जाय इतना और इतना कि स्वयं सीधा सतर टिक न सके। आश्रय उस कृपा का हो और लेखनी के सिवा अन्तर उसकी भावना निरी गुण्ठन बनी रह जाय। यह हो सकता है और इसमें मेरे लेखन का साफल्य भी देग लिया जा सकता है।

लेखन भावना में व्यक्ति नहीं जीता। जीने में कम भी लगता है। और भोगने का शान्द नहीं जा सकता। बचकर अपने में सिमटे ता गाँठ के मानि हो वह माना है मुक्त और प्रगट नहीं बनता। पर चैन होकर वह जन्मा है सा चेतना फिरकर रहनवाली नहीं है। सत्य और त उसे आत्मप्रण है और चुनी है। पत्र अपने को सबका जड बना नहीं सकता। आत्मप्रण और

चुनौती के उत्तर में जो खता है तो जडत्व को ही अपनाता है। यहाँ रुकना नहीं है खुलते जाना है। रुकने पर बाह्य जगत बंधन हो रहता है। उसके निमग्न और चुनौती पर अपने चतय को खुलते जान देने में ही मानो बाह्य जगत में से उसकी मुक्ति का माग प्रशस्त होता है। निश्चय ही इसमें टक्कर होगी विग्रह हागा। नाना प्रकार के प्रश्न उत्पन्न हागे और मान्य होगा कि मुक्ति पथ राज पथ नहीं है। वह बड़ा ही कटकाकीण है और जीना पुरुषाघ है समस्या है। इसमें यात्री क्षत विक्षत होता है। अस्त ध्वस्त होता है। पर यात्रा छोड़ी कैसे जा सकती है? यदि भूल चतय खा नहीं गया है और प्रेम निष्ठा अकुण्ठित है तो बीच के सारे झगड़े-बखेड़े सहे जायेंगे और पार हाते जायेंगे। अति दुगम माग है और ससार नामा प्रहतामो से घिरा रहता है। पग-पग पर अवरोध है क्योंकि वहाँ मुझमें दूसरा है। किन्तु दूसरा यहाँ क्या है कौन है और इसलिए चित्तनिष्ठ होकर जो चलता है मानो वह आरमतामो और आरम्यताओ में बीच में सहज भाग पाता जाता है। धूल उड़ता है धुंध भी पग होती है ताने तिस्रन बनते और मिलते हैं पर यह तो जीवन का भोग और प्रसाद है अनवन बनती है और अथ का अन्वय रचा जाता है। फिर भी क्या डर है? अत में आत्मी को तो रहना पटी है। रहना सच को है और सच की राह में फूल ही फूल तो मिलनेवाले नहीं हैं काँट फूला से कम सच नहीं होने हैं और आयु बीतती है और आदमी का अत होना है। शरीर गिर जाता है और क्षय का प्राप्त होता है। जो बचता है वह स्वयं नहीं होता। स्वयं में शेष होकर जो रहता है वही बचा रह जाता है। अर्थात् सष्टि रहेगी और सज्जन रहेगा और आत्मा एक-एक कर आता जायेगा करता जायगा और जाता जायगा। इसलिए भावना की पूंजी लेकर हर आत्मी को परस्परता का विनाश होते हुए कम माग पर बन्ते ही जाना है। कुलिंग और बंदम से उम ब्यक्त नहीं हाना है और सगता है कि साहित्य की मौन बाणी का अवनम्य से ही उम नहीं जीना है बल्कि आपसापन में काम आनवाला मुखर और मख बाणी से भी उसे बतराना नहीं है। कारण, आदमी कितना ही सग्य हो कितना ही भावुक हा वह अपने में कुल और समाप्त नहीं है। उसे

शेष दिशाओं में भी होना है। उसे हर पर में उतरना है जिससे उसका एकाकी स्वयं सावजनीन आत्म बन जाय। इस प्रक्रिया में विकास साधने के लिए उसे शब्द प्राप्त हुआ है। निम्ना गया मूक शब्द साय ही बोला गया मुखर शब्द, हर शब्द लहर उठायेगा। उन लहरों में फेन पैदा हो सकता है गजन-तजन का रव भी उठ पड़ सकता है, किन्तु लहर उठकर फिर रुकना नहीं जानेगी और यदि शब्द आत्म के तल से आया होगा तो वह सर्वात्म का प्राप्त हागा बीच में बध नहीं होगा।

और मैं सोचता हूँ कि पत्रिका में प्रगट हुई प्रतिक्रियाएँ यद्यपि घोर हैं कठोर हैं तो भी यदि मुझे मुक्ति चाहिए तो उन सबको पी जाना होगा और निष्ठा को अनुष्ण रखकर बचने की युक्ति की खोज में पड़ना नहीं होगा। अच्छा है कि व्यक्तित्व न विचलित हो। उनकी मानसिकता ही हिले। प्रत्येक की श्रद्धा अविचल रह आग्रह और अभिनिवेश अवश्य धुँघ और आलोकित हो भायें। लहरें उभरें जो शरीर को ज्या का त्याग करती चेतना को भ्रन्ताती और जगाती चले। शब्द इसी तरह अपना काम करेगा। स्थूल का छोड़ देगा, सूक्ष्म जाकर अपना प्रभाव छोड़ेगा। किन्तु यदि स्थूल उसमें विचलित होता देखे, स्वार्थों के सूत्र हिलें और छिड़ जायें और उस कारण विग्रह में द्वेष भी पैदा हो, तो भी सब कुछ सह जाना हीगा और अपनी प्रापना और निष्ठा में भग नहीं आने देना होगा। प्रायणार्थ सब अनुष्ण रहें और सब जड़ता और अहता से उठकर जाग और चैतन्य में एक होते चले जायें।

‘पत्नी’ के बारे में

पत्नी कहानी जिस सन में लिखी गयी ठीक याद नहीं। जान पड़ता है प्रेमचंद तब जीवित थे। यानी सन् १९३६ रहा होगा।

या तो प्रातिहारि शब्द हमेंगा ही आश्रय का केन्द्र रहा है। पर तब उसमें और भी विशेष महिमा पड़ चुकी थी। लेकिन मेरे मन में होना था कि दृष्टि पर बहुत कुछ निभर है। सब अपने में निगुण होता है। वह बणना सीत है उसमें अपना रूप बण नहीं होता। घूप को तोड़ो तो ही नाना रंग धनते हैं अथवा घूप केवल उजली होती है। यानी प्रातिहारि को अपनी मनोरम अभिनायाओं में मग्न करके जा हम देखते हैं तो गायन यथाय सत्य नहीं देखते। उस निरपेक्ष परिप्रक्ष्य में दसा जाए ता चित्र तब शायद बदला हुआ दीये। उतना मोहक भी चाहे यह न हो। चलो प्रयाग कर दें।

उन दिनों प्रातिहारि भगवतीचरण की कहानी उल्लेख वर्षों में उभर कर सामने आयी थी। वह बग गोलें के साथ प्रयोग करते समय लाहौर में रावी नदी के किनारे घायत हुए और श्वात प्राप्त कर गये। घायत होने और मरने के बीच काफी समय उनमें सांस रहा। बताया जाता था कि इस अवधि में भी उन्हें अपने कष्ट का उतना ध्यान न था जितनी दसा के और दूगर सायिया के योग क्षेम की चिन्ता थी।—आदि आदि वीरता की बातें गुन कर हठात उन पर मन जाता था। मैंने सोचा कि यह तो प्राति का सवर जी गए सज्जन उनको लकर सगो-मदधिया ने क्या पाया ?

कहानी उपजी इस बिन्दु में। पति के श्वात बलि बाप तब कहानी का मैं ल जाऊंगा ऐसा सोचकर रचना का आरम्भ हुआ। वह मैं परती हो

थाएंगी, ऐसा अनुमान न था । आप जानते हैं, मैं स्वयं नहीं लिखता, लिखाना पड़ता है । लेखक बंधु को बीच में तनिक उठना हुआ । मैंने दया कि पांच टू गीट होने आ गए हैं । कहानी तकात्रेके जवाब में लिखनी गुफ की गयी थी । यानी कि भ्रष्ट इधर हो, उधर फट उमे भेज कर छुट्टी पाई जाए । पांचक पृष्ठ में तो कहानी बन ही जाती है । कहानी क नाम पर उतना आकार-प्रकार आमानो में निभ जायगा । लेखक बंधु आये तो मैंने कहा 'छाटा, एकार वाक्य और दोन देता हूँ । वन, दानो ही को भेज दो । ऐसे वह बन्धनी बनी और नाम पत्नी दना पडा । पत्नी इसलिए कि वहाँ तक जो रचना की स्थावृति बनी थी, वह पत्नी क पत्नीत्व को ही उभार द पाती थी । पत्नी की अपथा में ही पति बहा मानो अपना समथन-असमथन अथवा व्याख्या प्राप्त करत थे । मानो उम बन्धनी में वह स्वयं उतने गीपस्थ नहीं रह जात थे । ऐसे कहानी बनी और मृदण द्वारा परोमी जाकर लोगों के सामने आ गई । सुनने को मित्रा है कि वह रमणीक रचना है गिप की दृष्टि से अत्यन्त भय है सबथा मनीक है और जाने क्या-क्या नहीं है । अब बनाइय कि यदि यह सब है तो इसमें मेरा दाप कितना है ? मैं जो बनाने चला था उसके तो अभी तट तक भी नहीं आ पाया था । जो बन गयी, वह बनाना कभी सोचा नहीं था । इसलिए यदि उम कता की या गिन्य की या याम त्रियाम की कोई कृपानता निपुणता है तो वह नामगानी आ गयी होगी । मुझे उसकलिए जिम्मेदार नहीं ठहराया जा सकता है ।

कहानी-लेखक की हैसियत से मैं निणम अपन पास नहीं रखता हूँ । होसता है कि कहानी में पत्नी चमकी हो और पति फीक रह गया हा ऐसा कुछ ता कहानी में विविध रंगों के उपयोग से होना अनिवाय ही है । मेरा उद्देश्य किमी को पत्र-दृष्ट कर खिलाना नहीं है । जो जितना और जसा है, है । किमी को अच्छा बुरा बहन में क्या आता-जाता है ? दृष्टि और चित्तन यदि वैधानिक हो ता इन रुचि निभर विवेचना से छुटकारा मिल जाना चाहिए । यथाय वह कि त्रिमम अपनी ओर से क्रमना न जाए । निणमकारण विवेचन बहुत से चना बहुत हैं और उनका डर भी बन जाता है । एक गान है अद्रगानी,

दूसरा 'प्रतिगामी' । कहानी के पति पर पहला और पत्नी पर दूसरा विशेषण चाहे तो चिपका दिया जा सकता है । पर उन विशेषणों से विशेष्य को अपवा पाठक में उदभूत हुए भाव को व्याख्यायित नहीं किया जा सकता । विशेषण विवेचन के पटल तक जा पाते हैं । वही वे बनते टूटते रहते हैं । निन्तु कहानी का प्रभाव यहीं तक रहने के लिए नहीं होना चाहिए, उसे सम्बन्ध तक उतरना चाहिए । मतवादिता का श्लेष वहाँ तक पहुँचने में बाधक हो जाया करता है । वह निर्विगुण्ट अर्थात् केवल सम्बन्ध की जो भूमि है वहाँ सिंचन पहुँचना चाहिए । वहाँ से अकुरित हुए को फिर चाहे हम जिस अभिमत की सजा दें । आत्म-सम्बन्ध को स्पन्दन प्राप्त हो चुका होता है और चेतना को एक उन्बोधन मिल जाता है तो बम है । फिर यह अलग बात है कि किस उपयोग में हम उसे लाते हैं ।

कहानी की पत्नी पत्नी इतनी अधिक हो सकती है कि व्यक्ति वह हो ही नहीं । गानो वह परम्परागत धारणा का चित्रित करन के निमित्त बना चरित्र मात्र हो । उमका अरना निजी स्वत्व स्वत हो ही नहीं । ऐसा होता है और यही जीवन की विडम्बना है । निजता नियतता में बस कर कममसाती रह जाती है । पर उस सम्बन्ध का कोई महत्त्व्य रचना के समय मेरे मन में न था । मेरी ओर से वह एक सण्ड चित्र में अधिक नहीं है जिससे पति विचार में प्रवृत्त है पत्नी सम्बन्धना में सवत्त । य दोना वृत्त परस्पर निरपेक्ष नहीं हैं पर दोनो की सापेक्षता जम जागिन है और इन तरह द्वताद्वत की एक अजीब पहेली सी सामने में आता और भाँकी दंजर निकलनी चनी जाती है । एक विवगना है गितम मन्नुभूति की व्याप्ति का धनुमन हा सक ता गायकता या जाती है, अथवा यह निरी व्ययता घनी रहती है ।

फरवरी '६७

विवाद-प्रतिवाद

इस बीच श्री जैनेन्द्र जी की खूब कहानियाँ आ रही हैं। प्रायः क
कण्टास्ट से दो कहानियाँ एक दम सामने रख रहा हूँ। 'विज्ञान' और 'अ-विज्ञान'
दोनों कहानियाँ आधुनिक हैं, आधुनिक चित्राकार की गीत, जिस आश्रय
परिप्रेक्ष्य से ले लिया गया है। आन्तिक और मिस्टिक प्रकृति, शक्ति और साम्य
हैं, दोनों के सामने औरत नाम की चीज नहीं है। या टाक-अप-कर, नाम
जोषकर देन तो इस स्थिति में सामने आती है। जिस काम-धन्दा और जिस
प्रेम-कथा की बात जैनेन्द्र जी घोर दार्शनिक हास्य किया करते हैं, वह अत्र
भी उनकी कलम पर आती है। जनेन्द्र जी न जमे उलझे हुए मन को 'पद्म'
और 'सुनीता' में सामने रखा है उससे वे एक इंच भी आगे नहीं बढ़ें। श्री
काश्यप होता है कि १६ से ६० तक वह भी वही उलझते हुए बना रह गया है।
है ? साहब बात तो यह है कि प्रेम और मरग में क्या अन्तर है ?

और भी कुछ इसी तरह की गिकायतें हैं। कुछ टेक्नीक की एक्परेमेंटेशन की कुछ पीनोग्राफिक स्टफ की, जिसी को यह अच्छा नहीं लगा कि क्रिस्टीन कीजर काण्ड को इतनी मजी हुई कलम क्या मिनो ? आदि।

टेक्नीक और प्रयोग शब्द अब तक मरी चतना से अछूते रहे हैं। मुझे उनका पता नहीं रहता है। हर कहानी फिर भी अपन म अलग बन जाती है। यह अनिवायता अनिवाय और सहज है।

स्टफ का सवाल जहाँ तक है मुझे बिन्ही निषेध की रेखाआ का पता नहीं है। सत्य के अनुसंधान म ऐसी रेखाएँ ठहर भी नहीं सकती। बल्कि अनुसंधान के लिए अधिकार सतह व नीच ही जाना होता है यानी वर्जित क्षेत्र एमे काम के लिए अधिक उपयोग हो निकलता है।

एक भाइ ने बहुत पने की बात उठाई है। अनासक्ति को लेकर व पूछना चाहत है कि कि गरुड क 'देवता' का आदर्श माना जाए जि धर्मशास्त्र के श्रीकृष्ण का ? यह जिनाता मार्मिक है किन्तु उमक विवेचन के लिए अब सर दूगरा बनाना होगा। देवतास पायती के द्वार पर जाकर अंत म मर जाता है यह अनासक्ति का लक्षण नहीं माना जाएगा।

एक अनोखे बघु ने तो कमाल ही किया है। जि—पान म जो बि को अलग करके लिखा गया है मा वह कन्त हैं कि वह अंग्रेजी का बी है। और यह प्रथम अक्षर Victory का नहीं है, Vagina का है। यह सगण्य कहानी की प्रणमा करते ह और उसम गहरी गूढना देखते हैं। स्वीकार करना चाहिए कि यगी अतट पृ मरे पास नहीं है।

अब श्री रमेण बन्नी ! यह स्वय कहानी लेखक हैं। कहानी ही नहीं लिखते नई भी लिखते है। उन्हें अचरज है कि जो मैं शुरू सोलह म था वही अब साठ वष के पेटे म आकर बसे बना रह गया हूँ ! यही का वही दर्शन ! अगर उनकी वाग सच है तो मरे लिए स्वय प्रणता का कारण है। साठ पर भी मैं सोनह जितना नया हूँ ता क्या यह गौरव की बात गही होनी

चाहिए ? यानी अगर रमेग वतोम वरम के हों, तो मैं उनमे दुगुना नया ठहर सकता हूँ। उनको साफ है कि प्रेम और सेक्स दो अलग चीजें हैं। यह सच है कि घर निण यह सफाई अब तरु साफ नहीं है। लगता है कि ये दोनों चीजें, दो समानांतर रखाया जैसी मीठी बेहूण सीधी समझ के लिए ही हो सकती हैं। लेकिन आदमी और उसकी समझ सकीर की तरह सीधी ही सकती है इसमें शक है।

या मेरी उम्र साठ तर आया चाहती हो। मानव जाति की तो लावा-लाग वरम हो चुकी है। काम प्रेम की उलगन उमकी अब तर वटी नहीं है। क्या करें दम पीटी म जनम कर रमेग वगी उमका पार पा गय हूँ, तो बहुत ही गुम सूचना है लेकिन इसका भरोसा हाता नहीं है। अभी मैं सनाह दूगा कि वे जीवें थीर भुगतें। उनके बाद जो कहगे, वह अधिक मुनी नायक होगा। निमाण की बहुरू म न आ जाय कि यान उनके लिए मुनरु चुकी है। ऐसा होना तो उपग और फनवा देने का ही काम उनके लिए रह जाता। फतवा भी उनस आने लगा है लेकिन गनीमत है कि कहानी भी आ रही है। वह सुलभन म से नहीं उलभन म स ही आ सकती है।

एक जगह उहोने मेरे लिए 'आत्म भाग' गळ का उपयोग किया है। सदभं चाहे मरा हो गळ वह बहुत ही सही है। जेनेद्र (के साहित्य) का नही, सारे साहित्य का ही इष्ट आत्म भोग है। भला मोचिये कि कागज उलम स आत्म-भोग और आत्म मुन ही नहीं तो क्या इन्द्रिय भाग और इन्द्रिय मुन भी पाया जा सकता है ? साहित्य म यनि कोई लपक या पाठक सचमुच वायिव या ययाय भाग पाने की अकाशा रखते हा तो वह प्रत्यागा अत मे विडम्बना ही सिद्ध होने वाली है। मयायवाद कुछ इसी भूव म पडकर, मीमा लाधकर अति वाद बन गया था। और अब भी उसके लगन समाप्त नहीं हैं। आत्म भाग की मर्यादा ही साहित्य की एक मर्यादा है। इन स्त्रीहति और मीमा म से न जेनेद्र छूट सकता है न कोई और।

वधी अभी मुभ भाषान म मिले थ। विस्मय हुआ कि काम और प्रेम के

दो पन का सहारा उनकी समझ ने अब तक याम रखा है। मैं उन्हें कहता हूँ कि इस सहारे उनका नया पन अधिक टिक नहीं पायेगा, कारण यह मूल बहुत पुराना और जीण बन चुका है। यह तो पलायनी अध्यात्मवादी सूत्र है, जो आज काम नहीं दे पा रहा है। जीवन को एकत्रित और एकीकृत ठाना है। धर्म पूर्वक काम व पुरुषार्थ को मोक्ष में अभिविक्त होना है बीच में अब व काम को छोड़कर चलने वाला धर्म मोक्ष तक ता उठा ही नहीं सका उलटे नाना बंधन की रचनाएँ कर सका है। नयता का सहारा लेकर क्या नयी उसी द्वैत को बदलना चाहते हैं ?

एक बात और 'नपुंसक श' से वे घबरात मालूम होते हैं। इसी से उमे मानो गाली मान लेते हैं। स्त्रीत्व और पुरुषत्व में पतित्व अंग होना है वह स्त्रीलिंग अथवा पुलिंग नहीं होता है। कोई भी आत्मा अथवा मूल्य स्त्रीलिंग व पुलिंग नहीं होता। महत् तत्त्व सब लिंग की उभयता से पार हात हैं। हमारे धर्म में समग्रता या नपुंसकता का भूमि पर ही व प्रतिष्ठ होते हैं। स्वयं स्त्री-पुरुष का सामाजिक सावजनिक व्यवहार व्यक्तित्व की भूमिका पर और तिगहीन हुआ करता है। इस तरह नपुंसकता में हम 'यकित्व' का जन्म की स्थापना भी चाहें तो करके देख सकते हैं। आज के युवकों का अपने पौरुष के बारे में इतना सदिग्ध नहीं होना चाहिए कि हर जगह अपना पुरुषत्व का प्रमाणित करने की हविस हो, अथवा भय हो कि कहीं वे नपुंसक न मान लिये जाय। विश्वस्त पौरुष वानहीं बनि यह निश्चिन्त बनने का प्रमाण है। प्रत्येक समाहित व्यक्तित्व निगाहीन और नपुंसक होता है और यह स्वच्छिन्न नपुंसकता सज्जनता और सम्पत्ता का लक्षण है। नपुंसक श' से किसी को घबराने की आवश्यकता नहीं है। पास कर उस ता बिल्कुल नहीं जो पारिवारिक और सामाजिक दायित्वों से घबराना नहीं चाहता है। स्त्रीत्व के अथवा पौरुष के व्यय प्रमाण में से कभी व्यक्तित्व की गरिमा नहीं जानकी है और न अपनी बहार्तियों में यह मैं सम्भव बना सका हूँ। इस संबंध में मेरे मन में तनिक भी दोषत्व की अनुभूति नहीं है। बल्कि मानता हूँ कि यदि युवावस्था में इत

सत्य की याद रखी जा सके तो प्रेम अधिक गम्भीर और विधायक होगा । और समस्या में अधिक सफलता की सृष्टि कर सकेगा ।

इन आये पत्रों से एक दूर की बात भी यहाँ कहना सगत और आवश्यक जान पड़ता है । वह यह कि मैं अच्छा होना नहीं चाहता हूँ । रोग यही है । हम सभी लोग अच्छा होना चाहते हैं । इससे होता है यह कि बुरा ढक जाता है अच्छा मड़ जाता है । अच्छाई का लिवास की तरह ऊपर से हम जोड़ लेते हैं और बुराई को आट दिये रहते हैं । मेरी निष्कन्त, खाम कर निम्नते में, यह है कि मैं अच्छाई को अलग से देख ही नहीं पाता हूँ, अच्छाई मुझे सच्चाई में परिचित होगी है इसलिए अच्छाई की जगह सच्चाई जाना मुझे इष्ट है । सच्चाई हाज़र कोई बुरा भा निष्कन्त तो मुझे असह्य न होगा । उलट झूठा हाज़र कोई गिष्क सत्य सभ्रात, यह त भ्राति दीये तो मेरी सह्यता टूटने लग जाती है । समाज भले को चाहता है और पूछता है । बुरे से वह इतना आकुलित रहता है । भ्राई उस भली और बुरी लगती है, सच्चाई से और सच्चे से उस घटका रहता है । इसलिए सच्चे का माग में बाधाएँ और विपत्ताएँ आती हैं । मुझे सगत है कि कठिनाई यहाँ से बनती है । नीतिनिष्ठ पुरुषों के रूप में जिन नामों का महिमा में अपन जान में दुरदुराएँ गये थे । नई नीति सदा सवदा, गुरु में अनिति ब्रसी जगती रनी है । कारण, कि मुविधा प्राप्त हो । आरम्भ में उमस अमुविधा प्राप्त होती रनी है ।

मेरे मन में निश्चय है कि शुभता अत में सत्यता के ही साथ है । इसलिये सत्य का माग में विनगता कितनी भी आवश्यक हो विचिकित्सा अथवा भय के लिए यहाँ विनशुन अवकाश नहीं है ।

१२ फरवरी ६८

— जैन-द्रकुमार

धी

आपका इस अत्र में जनेन्द्रकुमार जी के विचार छपे जिसे हैं । जाहिर है कि ये अपनी ज्ञानकार कहानी पर आये खना तक सीमित नहीं हैं । मे

चाहते तो दार्शनिक फि तियाँ कमने तथा अपने लेखन मे अच्छा' और 'सच्चा' दूना के बजाय उस कहानी पर आयी बातों का उत्तर सीधे से उसके सजन का प्रोसेस बताते हुए दे सकते थे । उन्होंने किया तो यह कि प्रश्ना का निमाग की बहक बताकर नव्यता यथाथवाद, तथा कहानी और रमेग बधी तक पहुँच गये हैं । यदि वे मरे थारे म ही नाराज होकर कुछ कह दते ता मैं यह पत्र गही लिखता, तकिन तगता यह है नि व भाक म कुछ कमिट कर गय है और तग म सारे नव लेखन का चुनौती भी दे गये है । अत नयी पीढा की दृष्टि और समकालीन जीवन पर चर्चा करन के लिए एक माध्यम मिल गया है मुझे । आप साचिये तो सारे साहित्यका स्पृ आत्मभोग है ? ईा द्रय सजतना और काम को जो अनग मानते है क्या व एकीकृत है ? लिंगीन यनार और स्वच्छिन उपमकता से विधायन प्रम किया गा सजता है ? विभाजित व्यक्तिन, बुरा बनाम सच्चा अतिवादी भूठा य सब नये लेखकों की महिमा को उनक द्वारा दिये गये विगणण है । मैं साचता हूँ नयी पीढी का रास्ता भूतभुलया वाता हो सजता है, उगका मस्तिष्क नही । वभी जन द्रकुमार जी कहते थ— प्राणि मात्र व सुप दुष म तद्रूप होकर ही हम अहूनूय हा पाते । यही साहित्य की चरम उगाप्यता है । व ही आज कह रहे हैं — सार साहित्य का स्पृ आत्म भाग है ।

बान को एक तरतीक देना चाहूंगा

टाक ठीक तारीख याद नहीं लेकिन काई १० वष पहले एक प्राध्यापनजी ने आधुनिक काव्य पर लिखा हुआ अपना एक छात्रापयोगी लख लिखाया था उसम यह ध्वनित था कि आज छायावाक्य व वाक्य प्रगतिवाक्य का ही बानगना है और प्रगतिवादी बरिनाए ही लिगी जा रही ह । मैंन उ ह सुभाव लिया नि प्रगतिवाक्य था अब नहा है अब आप प्रयोगवाक्य पर आकर लग समाप्त काजिय । वे मुझ म दो चार प्रयोगवाक्य काव्य सक्तरन करके चल गय । मयाग हुआ कि पाँच वष बान आधुनिक काव्य पर उाकी एक पुस्तिका प्रकाशित हुई । उगम व प्रयोगवाक्य की जय जयनार करते हुए उपसहार पर पहुच थ । मैं फिर धाना प्रयोगवाक्य अथ कहीं है ? यह तो आकर चना भा गया । अब आप नयी

विना प्रतिपाद
 कविता को समझ लीजिये। सब ही उसने मारी परम्पराओं को टाढ़ दिया है और वह हृदयोंस आग है।" फिर कुछ वर्षों के अंतराल से उनमें मुलाकात हुई। अब वे नयी कविता की आधुनिकता को अन्तिम सीमा मानने लगे थे। कि नयी कविता अद्विप्रस्त हा गयी है वह दापरे म जकड गयी है। मेरी बात से व एकदम चिड गये। बोल— तुम मर माय प्ले कर रह हो। पता नहीं तुम नयी पीढी के लोगो को क्या हो गया है कलसे तुम लोग हर सुबह एक नया भण्डा लकर आआगे में समय ही नहीं पाता कि तुम नये लोग इतनी तजी से बंस आगे बड जाते हा ? मैंने उह घात किया और कहा— मुझे भी आश्चय है कि आप पुराने लाग आगे क्या नहीं बढ़ते अपनी ही जगह क्या रंगने रहत है ?

यह वा यही सवाल मैंने जीने-दकृमार जी से भी पूछा था कि सोलह से साठ तक यह की वही उलभन कम बनी रह सकती है ? नयी पीढी का ही नहीं हर व्यक्ति हर दण आगे बढ़ता रहता है। लावा-लाव वर्षों के इस समय पर चढ़ने हुए मारी पीढी आगे बढ़ती है। मार ममाज की एक उम्र हानी है जो बढ़ती रहती है। हर व्यक्ति विकास रखा पर आगे बढ़ता है। हर नयी पीढी पुरानी पीढी के वि दु से जाग जानी है। उम्र समय-मिटि समाज साहित्य मे पीछे की तरफ बनना कभी होता नहीं है। घरती का गान घूमना धुगे पर ही गोन है समय पर नहीं। समय के प्रारम्भ और अंत कभी मिनते ही नहीं। हर व्यक्ति अपने म हर भण कुछ न कुछ जोडता है। पाँच की उम्र म जो बाज जिनामाएँ रहती हैं दम की उम्र मे व वैमानी हो जाती हैं। दम का मन्मिष्क बीस तक पहुँचते व्यक्ति मूर्ख बन जाता है। बीम की उम्र म जिम प्रेम म व्यक्ति तत्तीन होकर दूबता है तीम पर पहुँचते वह स्वय उमे 'एडो लगेष्ट नानस म कने नगता है। व्यक्ति प्रीत्र हाता रहता है। यत्र विकास और प्रगति की एक प्रक्रिया है जिममे मे गभी गुडरते हैं। बहता यह चाहता है कि १६ की उम्र म व्यक्ति जिनना अपरिपक्व सीमित पान तथा अनिश्चन दिना वाता होना है, बीस वह साठ की उम्र म नहीं रहता। नानह और साठ

दोना छोरो पर नयापन हो सफना है लेकिन प्रश्न उनकी निया सोलह मे भी नये नही थे । बुद्ध की गति धीमी हो सकती है वे भी चल सकते है, तत्र प्रश्न यह है कि आज नयी कविता और न बीच रत्नाकरजी और कौशिकजी कसे नगेंगे ? आज जब युग का तेजी से घूमते पहियो पर बठा है हम लोग एक दौडती हुई दुर्गितो समय के साथ पर मिलाकर चलना नयी पीढी की नियति है । बात है कि जनेन्द्रजी कह दें— 'कौन चला है समय के साथ पर मि सोचना तो हमारा अहभाव है । यदि किसी अवनतिक तरीके से कोई के किसी हिस्स पर रोक सक तो वह बसा हा ज म भर लिख और है । रोमांम लिखना शुरू किया तो ज म भर रोमांम लिखते रह फुरलिया क गीत गाना शुरू किया तो आज म बने ही गीत गाने अपनी दुकानदारी की बात भी है । बैसा न करना ग्राहका को तो किसी गाने वाले को नयी कविता लिखने की सलाह देना उनके का वा मार्केट छीनना होगा । किसी भी देगवे साहित्य म सयोग से श्व नहीं बनती है, लेकिन अपने देग म ऐसा हाता है । किसी समीक्षर दानिक कह निया ता उसी शाग को आड़ने लगा । लेकिन आज । लेखक सयोग को चुनीती देने का क्षमता रखता है । मुझे यह साफ कि कट्टो (परम वाली) पाठका को पसन् आयी थी इसलिए ज अपनी वाग की रचनाओ म रूपांतर स कट्टो को बार बार साथ है गग होना चर्चा का विषय रहा पाठकों न उगवे साहो-बनाउके उ चटखार लिये इसीलिए आज भी वे 'विपान और अविपान' म स्थिति ले आय हैं । यह उनक लेखन का नुस्खा है पुरानी कहानी क का राज है । मुनीता १९३२ म नगी हुई वही १९६४ म लीडरान रूप होकर फिर धरीर अनावृत कर रही है । अनावृत होने की घ बसी है । पाठका का किमी स्थिति विगप म चाट का मजा क्षान विचाम घर्मा लसक को चाट का ठेना लगा लेना चाहिए ? ।

नयी कहानी के लेखकों की ट्रेजेडी यही है कि वे परिपक्व होते चलते हैं और यही उनका नयापन है। ऐसा अगर नहीं होता और वे नुस्खों पर ही चलाते तो हिन्दी में दम जने-दरकुमार बीस कृष्णचन्दर और चालीस शरच्चन्द्र पिछने एक दशक में पैदा हो जाते।

नयी पीढ़ी के लेखक के साथ एक और निबन्ध है कि वह कुछ ओढ़ता नहीं या कुछ ओढ़कर चलना पसन्द नहीं करता। जहाँ दशन की बात आती है वह उसका विश्लेषण कर देता है। जहाँ आध्यात्मिकता की बात आती है वह उसे अ-भावहारिक ठहरा देता है। जहाँ काम की बात आती है वह उसे अ-भावहारिक ठहरा देता है। जहाँ काम का प्रश्न उठता है वह उममें उभरता नहीं। जहाँ प्रेम की गुत्थियाँ पैदा की जाती हैं वह उसे आउट ऑफ़ डेट कहकर अपने दूसरे जरूरी कामों में व्यस्त हो जाता है। काम और प्रेम को सहजता में वह प्रिया और भाव की सजा दे देता है। उसका विभाजित व्यक्तित्व आन्ध्र की दृष्टि से गत हो लेकिन तृकीकृत है, इसलिए उसे स्वीकार कर लेता है। वह घर में दीपक पहले जलाता है उसका घर आज का वास्तव तोच है। वह प्रेम से असम्भव होकर काम में डूब सकता है क्योंकि काम उममें लिए भूख है। वह काम से असम्भव होकर प्रेम में कुछ समय के लिए खो सकता है क्योंकि प्रेम उसकी सचेतना है। वह गलत के लिए कुछ नहीं कर सकता उममें लिए प्रेम गरीब पर इत्र छिड़कने की तरह बेमनत्र है। वह काम में मदा सबदा डूबा नहीं रह सकता क्योंकि सबदा जरूरी है लेकिन चौबीस घण्टे खाना पीते नहीं रहा जा सकता। उममें काम ऐसे दशन में उभरने का भी वकन नहीं है। वह इन्द्रिय सचेतना लेकर पैदा हुआ है—उसे वाला वाला और मफेन्द्र, सफेन्द्र दिवायी देना है। उसे खट्टा, खट्टा लगता है और मोठा मोठा लगता है। यदि नयी पीढ़ी के किसी व्यक्ति की आँखें खराब हो जायें तो वह स्वीकार करेगा कि उसे दिवायी देनी दे रहा है, जबकि पुरानी पीढ़ी का व्यक्ति आँख फूट जाने पर भी यह कहता—उममें बढ़ने से निराला घन्टा हो ऐसा मेरा अनुभव नहीं है। आँखें निमित्त हों तो बाई बागण नहीं कि दखना भा निमित्त पडे। आँखों ऐसा अहाय प्राप्त कर ले तो क्या बढ़ने फिर तो दुनिया का सत्य मुट्ठी में होगा।

जा रहे हैं तो बवल इसलिए कि उनसे उत्पन्न होनेवाले भय का अवश्य बड़ा उपयोग है। उस भय का ताते ही युद्ध रूपा हुआ है, अथवा अब तक वह कभी का पूरा पड़ता। डेटरेण्ट उपयोग यहाँ माना जाता है।

लोग विज्ञान का सही मान रहे हैं दोष सर राजनीति का मानने हैं। अर्थात् उस नीति का जो विज्ञान का उपयोग करती है। विज्ञान तो विगुद्ध ज्ञान है और उससे बल प्राप्त होता है। उस बल का यदि सहार के लिए उपयोग किया जाता है तो यह दोष बनानिष्ठा का नहीं है, नेता का है। ऐसा मानकर विज्ञान को अधिकाधिक महिमा वित ही किया जा रहा है।

मेरा यह मानना है कि पदाय-बनानिष्ठा ही बनानिष्ठा नहीं है बल्कि राजनेता भी है जो विज्ञान की दृष्टि रखकर चलने का प्रयत्न करता है। आज का समाजनेता और राजनेता श्रद्धा का पुष्प बनने की अपने लिए उतनी आवश्यकता नहीं देखता जितना वह समाज का बनानिष्ठा बनना चाहता है। इस तरह यह समूची सम्यता बनानिष्ठा बनने के प्रयास में विभीषिका बन आयी है। अतः स्वयं विज्ञान के आगम अथवा मूल के विवेचन की आवश्यकता हो सकती है।

विज्ञान में हम पाता होते हैं वस्तु को नेप के रूप में लत हैं। इस तरह वस्तु की लिप्सा से उसके अनुराग से, हम उत्तीर्ण बन जाते हैं। उस निर्विकार जोर धीतराग शक्ति से तबपूवक वस्तु की यथायथा में उतरकर मानो वैज्ञानिक सार्य की उपलब्धि करते चल जाते हैं। इसी में से विज्ञान की उत्पत्ति हुई है और नये से नये आविष्कार हो पाये हैं। मनुष्य की क्षमता और विभुता बढ़ी है और वह प्रकृति का आज माना दास नहीं है, बल्कि स्वामी बन सका है।

मुझे लगता है कि यह तमाम उत्पत्ति और निधि अपने आप में बड़ी समुत्पत्ति नहीं है। उत्पत्ति एवं वास्तविकता के साथ मनुष्य का यह विभुता का सम्बन्ध सरथा इष्ट ही नहीं है बल्कि अनिष्ट भी है। विज्ञान का

गोजी तो जितने गहरे उतरता है उतना ही अपने आगे के नेप अर्थात् अनात तत्व की अपारता के समान बिनात और जिनामु बनता है। किन्तु वैम विरल खात्री को छोड़कर उम वैज्ञानिक खाज क फन म लाभ उठानेवाले रोप जन उदभ्रान्त और प्रसन्न बनते हैं, भगवान सब रूप हो जाते हैं और प्रकृति का विस्मय उनके लिए समाप्त हो जाता है। इस तरह मानव स्वभाव म से उमकी एक सम्पत्ता ही लुट जाता है। आम्तिकता और श्रुता नष्टप्राय होने लग जाती है।

पदाथ के क्षेत्र में वैज्ञानिक शक्ति की यह श्रुति एकाएक नजर नहीं आती। किन्तु मैन हटान मानव-सम्बन्ध के बीच म इसी वैज्ञानिक शक्ति को उतारकर अपनी विधान कहानी म दखना और लिखना चाहता है। परिणाम जो हुआ उमी ने कहानी म रूप म गठन और व्यजन पाया है। परिणाम बीभत्स और विडम्बनाजनक के अतिरिक्त कुछ और हा नहीं सकता था। वही बीभत्स भोगता पाठक के पाम यदि पहुँचना है ता क्या का अभीप्स्य ही उममे बनायास पूरा हा जाता है। सचमुच ही उम भीषण सम्भावना का पाठक की चेतना तक में पहुँचाना चाहता है जो वैज्ञानिकता को मानव सम्बन्धों के बीच म ज्यों का-त्यों उतारने के कारण टा जा सकती है।

विधान कहानी के थी एषम किसी अपनी महान आत्मवादी विश्व योजना म नारी सामर्थ्य का पूरा त्याग कर लेना चाहते हैं। इस हेतु म उपरी तीर पर कोई शेष नहीं देना जा सकता है। कहानी म बनिता न उतीण प्रतीत होने है। नारी का नग्न शरीर जहाँ नापा-तोना जा रहा है, उधर के आँसु फेरने की भी तयार नहीं है। उनको प्रकट में उम शरीर म तनिक आकषण नहीं है और वे सकेटरी के द्वारा ही उम नाप तोन के आधिक व्यापार को पूरा करा लत हैं। उनकी अपनी निगाह यदि है ता उम शरीर की यथार्थता और आकषकता पर नहीं है बल्कि उसके पार उम मत्व के गहरे उपयोग पर है। कारण श्री एक्स मनुष्य नहीं हैं, वैज्ञानिक हैं। सामान्य मनुष्य को जो या ता अर्चिपूण घृणा से या लाभपूण सानया मे भर दे सकता

हैं वह बस प्रलाभनीय उनमें लिए अविचारणीय है। उनका विचार ऊँचाई पर है मानो वे किसी आत्म स्वप्न में अवस्थित हैं। इसलिए न उन्हें जुगुप्सा है, न घणा है। न लोभ है न निप्सा है। अपने आत्म हस्तु के प्रति मानो वे सम्पूर्ण समर्पित हैं निजत्व से मर्यादा उत्तीण और अभिसिद्ध। उस दृश्य से जो पाठका को जुगुप्साजनक लगा है यदि हम श्री एक्स के व्यक्तित्व को अलग करके देख सकें तो गायद वह चरित्र महान और उदात्त और जितेन्द्रिय योगी के रूप में देखा जा सकता हो।

कथा की अंतिम दो तीन पंक्तियाँ यह लिखाने के लिए हैं कि यह वैचानिक व्यक्ति यदि इतना उत्तीण और सिद्ध समय दिखानी देना है तो केवल इसलिए कि उमन अपने भीतर के किसी गूढ़ सत्त्व का अस्वीकार किया है। मानो अतर्भावना को कुचत्तर धूय प्राय बना लिया है। उम सत्त्व को रोमान कहिये या बुद्ध कहिये। कहानी के द्वारा कहानी में और कहानी से बाहर भी मेरा आग्रह है कि विज्ञान के जार से उम स्वप्न सत्त्व अथवा सत्य को छूना या छोड़ना नहीं होगा बल्कि उमका अविषय स्वीकार करना होगा। अथवा मानव विभु के बजाय दरयु और देवता के राजाय दानय ही बन सवगा दूसरा कोई परिणाम नहीं आयगा। दूसरे गे में आम्तिन श्रद्धा के अभाव में विज्ञान अश्रेयस्वर परिणाम ही ला सकता है।

इसलिए कहानी न जितनी जुगुप्सा और घृणा पटा की है उतना ही एक तरह से मुझे सतोष प्राप्त हुआ है। क्योंकि उसमें जाने अनजान में अभिप्राय की गभीष्ट सिद्धि हो गई है।

मुझे दुःख है कि कहानी के अपने अन्तरंग मानव्य के बारे में मुझे ये बातें कहने पड़े हैं। वह सब पाठक की आर से आविष्कारणीय रहने देना चाहिए था, मेरे द्वारा वह आरापित नहीं होना चाहिए था। फिर भी यह करना पडा है इनके लिए मैं आपका और आपके पाठक की क्षमा का प्रार्थी हूँ।

—जैनद्रकुमार

